Training Manual

Scientific Dairy Farming

(वैज्ञानिक डेयरी फार्मिंग)

21st to 25th October,2024

Directorate of Extension Education
Bihar Animal Sciences University, Patna-14

Training Manual

Training Program
on
Scientific Dairy Farming
21st to 25th October,2024

Sponsored by:

Agricultural Technology Management Agency (ATMA), Sitamarhi

Organized by:

Directorate of Extension Education
Bihar Animal Sciences University, Patna-14

मुख्य संरक्षक

डॉ. डी. आर. सिंह

कुलपति, बि०प०वि०वि, पटना–14 (बिहार)

मुख्य संपादक

डॉ.ए.के.ठाकुर

निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, बि०प०वि०वि, पटना–14 (बिहार)

संपादक

डॉ. योगेन्द्र सिंह जादौन

उप–निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, बि०प०वि०वि, पटना–14 (बिहार)

डॉ. सुमित सिंघल

प्रध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, बि०प०वि०वि, पटना–14 (बिहार)

डॉ. गार्गी महापात्रा

सहायक प्रध्यापक, पशुधन उत्पाद प्रौद्योगिकी विभाग, बि०प०वि०वि, पटना–14 (बिहार)

सुश्री सोनम कुमारी

सहायक प्रध्यापक, डेयरी प्रौद्यगिकी विभाग, स०गाँ०ग०प्रौ०सं०, (बिहार)

प्रकाशन वर्षः– अक्टूबर, 2024

प्रकाशन संख्याः- 48/2024/DEE/BASU

निर्देश

इस सार–संहिता में प्रकाशित सामग्री वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है तथा लेखकों द्वारा पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत की गयी हैं। संपादक, प्रकाशक व मुद्रक लेखकों के द्वारा दी गयी जानकारी के लिए उतरदायी नहीं हैं।

आभार

संपादक मंडल प्रस्तुत सार–संहिता के मुद्रण एवं चित्रण में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहयोग देने वाले सभी व्यक्ति विशेष का आभार प्रकट करता है।

उद्धरण

अरविन्द कुमार ठाकुर, योगेंद्र सिंह जादौन, सुमित सिंघल, गार्गी महापात्रा एवं सोनम कुमारी। वैज्ञानिक डेयरी फार्मिंग, बिहार पशु विज्ञान विश्वविधालय, पटना–14, पृष्ठ संख्या – 118

प्रशिक्षण निदेशक

डॉ.ए.के.ठाकुर

निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, बि०प०वि०वि, पटना–14 (बिहार)

प्रशिक्षण समन्वयक (Course Co-ordinator)

डॉ. योगेन्द्र सिंह जादौन

उप–निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, बि०प०वि०वि, पटना–14 (बिहार)

संयोजक (Course Convenor)

डॉ. सुमित सिंघल

प्रध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, बि0 प0 वि0 वि0, पटना–14 (बिहार)

प्रशिक्षण सह– समन्वयक (Course co-ordinator)

डॉ गार्गी महापात्रा

सहायक प्रध्यापक, पशुधन उत्पाद प्रौद्योगिकी विभाग, बि0 प0 वि0 वि0, पटना–14 (बिहार)

सह– संयोजक (Course co-Convenor)

सुश्री सोनम कुमारी

सहायक प्रध्यापक , डेयरी प्रौद्योगिकी विभाग, स0 गाँ0 ग0 प्रौ0 सं0 (बिहार)

प्रस्तावना

डेयरी फार्मिंग, भारत की कृषि अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण स्तंभ है। दूध और दूध उत्पादों की निरंतर बढ़ती मांग ने इसे एक लाभदायक व्यवसाय के रूप में स्थापित किया है। इस मैनुअल का उद्देश्य न केवल किसानों को उच्च गुणवत्ता का दूध उत्पादन करने में सहायता करना है, बल्कि उन्हें आधुनिक तकनीकों और प्रथाओं से भी अवगत कराना है।आज के प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में, केवल पारंपरिक तरीकों पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं है। इसलिए, यह आवश्यक है कि किसान नवीनतम शोध और तकनीकों का उपयोग करें। इस मैनुअल में, हमने पशुपालन, आहार प्रबंधन, स्वास्थ्य देखभाल, प्रजनन तकनीक, और विपणन रणनीतियों जैसे महत्वपूर्ण विषयों को शामिल किया है। प्रत्येक अध्याय को विशेषज्ञों की सलाह और वास्तविक जीवन के अनुभवों के आधार पर तैयार किया गया है, ताकि पाठकों को स्पष्ट और व्यावहारिक जानकारी मिल सके।

यह मैनुअल उन नए और अनुभवी किसानों के लिए एक व्यापक गाइड के रूप में कार्य करेगा, जो अपने डेयरी व्यवसाय को सफलतापूर्वक संचालित करने की इच्छा रखते हैं। इसमें विभिन्न प्रकार के पशुओं का चयन, उनके पोषण की जरूरतें, और रोगों से बचाव के उपाय शामिल हैं। साथ ही, आधुनिक तकनीकों का उपयोग कैसे किया जाए, इस पर भी चर्चा की गई है। इसके अलावा, मैनुअल में मार्केटिंग और बिक्री रणनीतियों पर भी ध्यान दिया गया है। एक सफल डेयरी व्यवसाय केवल उत्पादित दूध की गुणवत्ता पर निर्भर नहीं करता, बल्कि इसके विपणन और बिक्री के तरीकों पर भी निर्भर करता है। इस संदर्भ में, हमने विभिन्न चौनलों का उपयोग करने की सलाह दी है, जिससे किसान अपने उत्पादों को अधिकतम लाभ के साथ बेच सकें।

यह मैनुअल आपको डेयरी फार्मिंग में सफलता प्राप्त करने में सहायक होगा। हम सभी जानते हैं कि एक समृद्ध डेयरी उद्योग हमारे समाज को पोषण प्रदान करता है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती देता है। आशा है कि आप इस मैनुअल का अध्ययन करेंगे और इसे अपने व्यवसाय में लागू करेंगे। आपका प्रयास ही हमें एक मजबूत और स्थायी डेयरी उद्योग की दिशा में आगे बढ़ाएगा।

धन्यवाद।

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय कैम्पस, पटना–14
BIHAR ANIMAL SCIENCES UNIVERSITY
Bihar Veterinary College Campus, Patna-14
Email: deebasupatna@gmail.com

डॉ. ए. के. ठाकुर
निदेशक प्रसार शिक्षा

संदेश

प्रिय पाठकों,

आपका स्वागत है इस विशेष प्रशिक्षण मैनुअल में, जो डेयरी फार्मिंग के विभिन्न पहलुओं को समझने और सिखाने के लिए तैयार किया गया है। आज के समय में, जब कृषि क्षेत्र में नवीनतम तकनीकों का समावेश हो रहा है, डेयरी फार्मिंग एक महत्वपूर्ण एवं लाभकारी व्यवसाय बन गया है। इस मैनुअल का उद्देश्य किसानों और उद्यमियों को आधुनिक जानकारी और प्रथाएँ प्रदान करना है, ताकि वे अपनी उत्पादन क्षमता को बढ़ा सकें। भारत में दूध उत्पादन एक प्राचीन परंपरा है, लेकिन इसके साथ ही यह एक तेजी से विकसित होने वाला क्षेत्र भी है। हमें यह समझने की आवश्यकता है कि सफल डेयरी फार्मिंग केवल पशुपालन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें प्रबंधन, मार्केटिंग और वित्तीय योजना भी शामिल है। यह मैनुअल इन सभी पहलुओं को समाहित करता है।

इस प्रशिक्षण मैनुअल में विभिन्न विषयों को शामिल किया गया है, जैसे कि उचित पशु चयन, आहार प्रबंधन, स्वास्थ्य देखभाल, प्रजनन तकनीकें, और उत्पादन प्रबंधन। हम यह सुनिश्चित करना चाहते हैं कि प्रत्येक किसान न केवल अपने पशुओं का सही तरीके से ख्याल रख सके, बल्कि वे अपने उत्पादों को बाजार में सफलतापूर्वक विपणित भी कर सकें।इसके अलावा, मैनुअल में वास्तविक जीवन के उदाहरण, केस स्टडीज और विशेषज्ञों की सलाह शामिल की गई है, जो पाठकों को अधिक समझने में मदद करेंगी। हमें विश्वास है कि यह सामग्री किसानों को बेहतर निर्णय लेने में सक्षम बनाएगी और उन्हें अपने व्यवसाय को स्थायी रूप से विकसित करने में मदद करेगी।

मैं सभी पाठकों से आग्रह करता हूँ कि वे इस मैनुअल का अध्ययन करें और इसे अपने दैनिक कार्यों में लागू करें। आपके प्रयास और समर्पण से हम एक समृद्ध और स्थायी डेयरी उद्योग की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं।आपका सहयोग और भागीदारी आवश्यक हैं। आइए, हम मिलकर डेयरी फार्मिंग के क्षेत्र में नई ऊँचाइयाँ प्राप्त करें और अपने समाज को एक स्वस्थ और समृद्ध भविष्य की ओर ले जाएं।

धन्यवाद।

(ए. के. ठाकुर)

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	आलेख	पृष्ठ सं.
1	भारत की महत्वपूर्ण गाय एवं भैंस की नस्लें सोनी कुमारी, जय प्रकाश गुप्ता, मनमोहन कुमार एवं रंजन कुमार सिंह	1–4
2	उपयुक्त दुधारू पशुओं के चयन एवं खरीद के समय ध्यान देने योग्य बातें जय प्रकाश गुप्ता, सोनी कुमारी, रमेश कुमार सिंह एवं संजीव रंजन	5–9
3	वैज्ञानिक डेयरी फार्म प्रबंधन मनमोहन कुमार, रंजना सिन्हा, दीप नारायण सिंह, दुष्यंत यादव एवं सुचित कुमार	10–15
4	हे एवं साइलेज बनाने की विधि एवं संरक्षण कौशलेन्द्र कुमार	16–19
5	हे द्वारा हरा चारा संरक्षण धर्मेन्द्र कुमार	20–22
6	पशु पालकों द्वारा साल भर हरे चारे की उपलब्धता धर्मेन्द्र कुमार	23–29
7	गैर परम्परागत हरे चारे का प्रसंस्करण धर्मेन्द्र कुमार	30–34
8	डेयरी पशुओं के प्रमुख रोग, उपचार और बचाव मृत्युंजय कुमार, विवेक कुमार सिंह, पल्लव शेखर, अरविन्द कुमार दास एवं ज्ञानदेव सिंह	35–39
9	डेयरी पशुओं का स्वास्थ्य प्रबंधन (प्राथमिक चिकित्सा, कृमिनाशक एवं टीकाकरण) विवेक कुमार सिंह, पल्लव शेखर ,मृतुन्जय कुमार, ज्ञान देव सिंह एवं सुमित सिंघल	40–47
10	दुधारू पशुओं में आवास प्रबंधन रवि रंजन कुमार सिन्हा, योगेन्द्र सिंह जादौन, रविकांत निराला एवं राकेश कुमार	48–52
11	मृत पशुओं के शव निपटान के तरीके एवं दिशा निर्देश कौशल कुमार	53–55
12	छेना, खोआ और इनसे आधारित पारम्परिक मिठाईयॉ बनाने की विधियाँ सोनम कुमारी, योगेंद्र सिंह जादौन एवं सुमित मेहता	56–61
13	दुग्ध एक संपूर्ण आहार रोहित कुमार जयसवाल, सुषमा कुमारी एवं गार्गी महापात्रा	62–68
14	दुग्ध उत्पाद एवं उपोत्पाद गार्गी महापात्रा, सुषमा कुमारी एवं रोहित कुमार जयसवाल,	69–74
15	दुग्ध प्रबंधन अनुराधा कुमारी, नीरज कुमार सिंह एवं अनुपमा कुमारी	75–77
16	बेहतर लाभ प्राप्ति के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली एवं फसल– सह– पशुधन की खेती संजीव कुमार, शिवानी, अभिषेक कुमार एवं अनुप दास	78–89
17	कृषक समुदाय को सशक्त बनाने में किसान उत्पादक संगठन (FPO) की भूमिका शिवराज सिंह, रोहित कुमार, योगिता शर्मा अवधेश कुमार झा एवं भोला नाथ	90–93

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	आलेख	पृष्ठ सं.
18	दुधारू पशुओं में होने वाले प्रमुख परजीवी जनित रोग एवं बचाव अजीत कुमार एवं शायमा के. पी.	94–103
19	बरसात के मौसम में पशुओं की देखभाल एवं प्रबंधन योगेंद्र सिंह जादौन एवं अरविन्द कुमार ठाकुर	104–106
20	नवजात बछड़े की देखभाल एवं प्रबंधन रविकांत निराला योगेन्द्र सिंह जादौन, रवि रंजन कुमार सिन्हा एवं राकेश कुमार	107–110
21	पशुओं में जनन चक्र एवं विशेषतायें सुमित सिंघल, आलोक कुमार एवं भावना	111–115
22	सर्दियों में जानवरों को होने वाले प्रमुख रोग और सलाह मृत्युंजय कुमार, विवेक कुमार सिंह एवं पल्लव शेखर	116–118

1 भारत की महत्वपूर्ण गाय एवं भैंस की नस्लें

सोनी कुमारी[1], जय प्रकाश गुप्ता[1], मनमोहन कुमार[2], रंजन कुमार सिंह[1]

[1]पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग, [2] पशुधन प्रक्षेत्र परिसर

बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना

साहीवाल : साहीवाल गाय एक प्रमुख दुग्ध उत्पादक प्रजाति है, जो मुख्यतः पंजाब राज्य के अमृतसर, फिरोजपुर, और गंगानगर जिलों में पाई जाती है। इस गाय को लंबी बार, लोला, मौन्टगमरी, मुल्तानी, और तेली जैसे नामों से भी जाना जाता है। इसका नाम पंजाब के मौन्टगमरी जिले के साहीवाल क्षेत्र से लिया गया है। साहीवाल गाय भारत के पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, और राजस्थान राज्यों में व्यापक रूप से पाई जाती है और अन्य राज्यों में भी इसकी उपस्थिति है। फिरोजपुर जिले के फजिल्का और अबोहर शहरों में शुद्ध साहीवाल गाय और बैल मिलते हैं। साहीवाल गाय की शारीरिक संरचना मजबूत होती है। इसकी त्वचा का रंग भूरे से लाल के बीच होता है, और इसकी गर्दन, नाक, और पैरों पर काले धब्बे होते हैं। बैलों का रंग अक्सर गहरा होता है, और कभी–कभी शरीर पर सफेद चिन्ह भी दिख सकते हैं। इनके सींग छोटी से मध्यम लंबाई के होते हैं, जो बाहर की ओर, फिर ऊपर की ओर और अंत में अंदर की ओर मुडते हैं। साहीवाल गाय की प्रमुख विशेषताएँ हैं फीका लाल रंग, छोटी सींगें, और ढीली त्वचा। इसकी गर्दन मजबूत और भारी होती है, और शरीर का आकार मध्यम होता है। मुँह और आँखें बड़ी होती हैं, और आँखें गोल होती हैं। गलकंबल लंबे होते हैं। साहीवाल बैल की ऊँचाई औसतन 170 सेंटीमीटर और गाय की ऊँचाई 124 सेंटीमीटर होती है। बैल का औसत वजन 540 किलोग्राम और गाय का औसत वजन 327 किलोग्राम होता है। जन्म के समय बछड़े का औसत वजन लगभग 22.4 किलोग्राम और बछिया का औसत वजन 20.7 किलोग्राम होता है। पहली प्रजनन की औसत आयु 41.7 महीने होती है, और दो प्रजनन के बीच का अंतराल लगभग 15.6 महीने होता है। साहीवाल गाय उच्च दूध उत्पादन और प्रोटीन युक्त दूध के लिए प्रसिद्ध है। एक साहीवाल गाय औसतन प्रति व्यान 2325 किलोग्राम दूध देती है, जिसमें 4.9 प्रतिशत वसा होता है। अच्छे प्रबंधन के साथ, एक साहीवाल गाय एक दिन में 8 से 12 लीटर दूध दे सकती है। साहीवाल गाय की बीमारी प्रतिरोधक क्षमता भी अच्छी होती है और यह गर्म और उमस भरे मौसम में भी रह सकती है। इसी कारण यह भारत के विभिन्न हिस्सों में किसानों के बीच लोकप्रिय है। साहीवाल बैलों का उपयोग कम दूध उत्पादन वाली प्रजातियों के सुधार के लिए किया जाता है।

रेड सिंधी : रेड सिंधी गाय की उत्पत्ति पाकिस्तान के बलूचिस्तान राज्य से मानी जाती है, और यह प्रजाति भारत के उड़ीसा, तमिलनाडु, बिहार, केरल, और असम राज्यों में भी पाई जाती है। इसे मलीर (बलूचिस्तान), लाल कराची, और सिंधी नामों से भी जाना जाता है। रेड सिंधी गाय मुख्यतः दूध देने वाले पशु के रूप में जानी जाती है। इसकी त्वचा का रंग विशिष्ट लाल होता है, जो गहरे लाल से लेकर धुंधले पीले रंग तक हो सकता है। कभी–कभी इसके गलकंबल और माथे पर सफेद

चिन्ह भी दिख सकते हैं। इस गाय का शरीर आकार में मध्यम और संकुचित होता है, और इसमें अच्छी तरह से विकसित माँसपेशियाँ होती हैं। इसके सींग नीचे से मोटे होते हैं और ये बाहर की ओर निकलकर ऊपर की ओर मुड़ते हैं। रेड सिंधी बैल का औसत वजन 450 किलोग्राम और गाय का औसत वजन 320 किलोग्राम होता है। बैल की ऊँचाई लगभग 130 सेंटीमीटर और गाय की ऊँचाई 120 सेंटीमीटर होती है। जन्म के समय बछड़े का औसत वजन 22.5 किलोग्राम और बछिया का औसत वजन 21.4 किलोग्राम होता है। पहली प्रजनन की औसत आयु 43.54 महीने होती है, और दो प्रजनन के बीच का अंतराल औसतन 14.57 महीने होता है। रेड सिंधी गाय उच्च दूध उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। एक गाय औसतन प्रति व्यान 1840 किलोग्राम दूध देती है, जिसमें 4.5 प्रतिशत वसा होता है। अच्छे प्रबंधन के साथ, एक रेड सिंधी गाय एक दिन में 10 से 15 लीटर दूध दे सकती है। रेड सिंधी गाय गर्मी को सहन कर सकती है और गर्म–उमस भरे मौसम में भी अच्छा उत्पादन देती है। इसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता और मजबूत रक्षा प्रणाली के कारण यह कम बीमार पड़ती है, जिससे किसानों को कम खर्चा आता है। इसलिए, भारत के गर्म क्षेत्रों में यह प्रजाति काफी लोकप्रिय है। रेड सिंधी बैल का उपयोग अन्य कम दूध देने वाली गायों के सुधार के लिए भी किया जाता है।

गिर : गिर गायें गुजरात के राजकोट, जूनागढ़, भावनगर और अमरेली जिलों में पाई जाती हैं। इन्हें भोदली, देसन, गुजराती, काठियावाड़ी, सोरठी, और सुरती भी कहा जाता है। इनका नाम गिर वन से पड़ा है, जहां ये पैदा हुईं। गिर गायें अच्छे दूध की उत्पादक होती हैं और गिर बैल बलवान होते हैं, जो हर तरह की मिट्टी पर काम कर सकते हैं। गिर गायों की त्वचा का रंग आमतौर पर लाल होता है, और सींग अर्धचंद्र की तरह मुड़े हुए होते हैं। उनके कान लंबे और लटकते हुए होते हैं, जिनका अंदर का भाग आगे की ओर होता है। गिर बैल औसतन 544 किलोग्राम वजन के होते हैं और गायें 310 किलोग्राम। बैलों की ऊंचाई लगभग 159 सेमी और गायों की 130 सेमी होती है। जन्म के समय बछड़े का वजन औसतन 20.77 किलोग्राम होता है। गिर गायों की पहली प्रजनन की औसत आयु 46 महीने है और दो प्रजनन के बीच का अंतराल औसतन 13.4 महीने होता है। गिर गायें साल भर में औसतन 2110 किलोग्राम दूध देती हैं, जिसमें 4.6 प्रतिशत वसा होता है। अच्छी देखरेख में, एक दिन में ये 12 से 15 लीटर दूध दे सकती हैं। इनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता भी अच्छी होती है और ये कम भोजन मिलने पर भी अच्छा दूध दे सकती हैं। गिर बैलों का उपयोग दूध देने वाली गायों की नस्ल सुधारने के लिए किया जाता है। इन्हें ब्राजील, अमेरिका, वेनेजुएला और मेक्सिको में आयात किया गया है और वहां सफलतापूर्वक प्रजनन किया गया है। गिर गायें किसानों के बीच बहुत लोकप्रिय हैं।

थारपारकर : थारपारकर गायें मुख्य रूप से गुजरात के कच्छ और राजस्थान के जोधपुर, जैसलमेर और बारमेर जिलों में पाई जाती हैं। इन्हें सफेद सिंधी, ग्रे सिंधी, और थारी भी कहा जाता है। इनका नाम थार रेगिस्तान के नाम पर पड़ा है, जहां से ये आती हैं। थारपारकर गायें दूध देने और बैल के रूप में वजन उठाने के लिए जानी जाती हैं। ये थार मरूस्थल की कठिन जलवायु के लिए अच्छी तरह अनुकूल हैं। इनका रंग सामान्यतः सफेद या हल्का धूसर होता है, और चेहरा व

शरीर के अन्य हिस्से थोड़े गहरे रंग के होते हैं। बैलों की गर्दन और शरीर का पिछला व सामने का हिस्सा भी गहरे रंग का होता है। उनके छोटे और मोटे सींग होते हैं, और कान झुके हुए होते हैं। इनकी विशेषता उनका उत्तल माथा है। थारपारकर बैल का वजन औसतन 475 किलोग्राम होता है, और गाय का वजन 295 किलोग्राम होता है। बैलों की ऊंचाई लगभग 133 सेमी और गायों की 130 सेमी होती है। बछड़े का वजन जन्म के समय औसतन 23.1 किलोग्राम और बछिया का 22.4 किलोग्राम होता है। थारपारकर गायें औसतन 41.3 महीने की उम्र में पहली बार गर्भवती होती हैं और दो गर्भधारण के बीच औसतन 14.18 महीने का अंतराल होता है। ये गायें प्रति वर्ष औसतन 1749 किलोग्राम दूध देती हैं, जिसमें 4.88 प्रतिशत वसा होता है। अच्छी देखरेख में, ये गायें एक दिन में लगभग 5 से 8 लीटर दूध दे सकती हैं। थारपारकर गायें गर्म और सूखे क्षेत्रों के लिए अनुकूल होती हैं। इन्हें पानी और चारे की कमी वाले इलाकों में भी पाला जा सकता है। इनकी गर्मी सहन करने की क्षमता और अल्पकालिक वनस्पति पर निर्भर रहने की आदतें इन्हें विशेष बनाती हैं। इनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता भी अच्छी होती है, खासकर परजीवियों और पेट के कीड़ों के खिलाफ। थारपारकर बैलों का उपयोग अन्य गायों की नस्ल सुधारने के लिए भी किया जाता है। ये उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में किसानों के बीच काफी लोकप्रिय हैं।

मुर्रा : मुर्रा भैंसें मुख्य रूप से दिल्ली और हरियाणा के जिन्द, गुडगाँव, रोहतक और हिसार जिलों में पाई जाती हैं। इन्हें दिल्ली, कुंडी, और काली नामों से भी जाना जाता है। ये भैंसें दूध, मांस, और माल ढोने के काम आती हैं। मुर्रा भैंसों का रंग गहरा काला होता है और उनके सींग सर्पिल आकार के और छोटे होते हैं। उनके छोटे और झूलते हुए कान भी उनकी पहचान का हिस्सा हैं। नर भैंस का औसतन वजन 567 किलोग्राम और मादा का 516 किलोग्राम होता है। नर की ऊँचाई लगभग 142 सेंटीमीटर और मादा की 133 सेंटीमीटर होती है। जन्म के समय बछड़े का वजन औसतन 32 किलोग्राम और बछिया का 30 किलोग्राम होता है। मुर्रा भैंसें औसतन 43.4 महीने की उम्र में पहली बार गर्भवती होती हैं और दो गर्भधारण के बीच औसतन 14.9 महीने का अंतराल होता है। मुर्रा भैंसों की दूध उत्पादन क्षमता बहुत अच्छी होती है। एक मुर्रा भैंस औसतन 1752 किलोग्राम दूध देती है, जिसमें 7.3 प्रतिशत वसा होता है। अच्छे प्रबंधन के साथ, ये भैंसें प्रतिदिन 8 से 16 लीटर दूध देती हैं। मुर्रा भैंसें गर्मी सहन करने में भी सक्षम हैं और भारत के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में पाली जाती हैं। भारत में, मुर्रा भैंसें दूध उत्पादन के लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रजातियों में से एक मानी जाती हैं। इनकी उच्च दूध उत्पादन क्षमता के कारण, ये डेयरी उद्योग में बहुत महत्वपूर्ण हैं और भारत की दूध की मांग को पूरा करने में बड़ा योगदान देती हैं। मुर्रा भैंसों का निर्यात कई देशों में किया गया है, जैसे बल्गेरिया, फिलीपींस, मलेशिया, वियतनाम, ब्राजील, और श्रीलंका, जहां ये भैंसें पशुधन उद्योग में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

नीली रावी : नीली रावी भैंसें मुख्यतः पंजाब के अमृतसर और फिरोजपुर जिलों में पाई जाती हैं। इसका नाम ''नीली'' सतलुज नदी के नीले पानी और ''रावी'' पाकिस्तान में रावी नदी के आसपास पाले जाने के कारण पडा है। इन्हें पंच कल्याणी भी कहते हैं। नीली रावी भैंसें आमतौर पर काले

रंग की होती हैं, और उनके सींग छोटे, घुमावदार होते हैं। इनकी आँखें सामान्यतः उभर कर दिखती हैं। माथे, चेहरे, नाक, पैर, और पूँछ पर सफेद रंग के धब्बे होते हैं, इसलिए इन्हें पंच कल्याणी कहा जाता है। नीली रावी भैंसें आकार में बड़ी और मजबूत होती हैं। नर भैंस का औसत वजन 567 किलोग्राम और मादा का 454 किलोग्राम होता है। नर की ऊँचाई करीब 140 सेंटीमीटर और मादा की 134 सेंटीमीटर होती है। जन्म के समय बछड़े का वजन औसतन 35 किलोग्राम और बछिया का 34 किलोग्राम होता है। पहली बार गर्भधारण की औसत उम्र 45 महीने है और दो गर्भधारण के बीच औसतन 16 महीने का अंतराल होता है। एक बार में ये भैंस औसतन 1850 किलोग्राम दूध देती हैं, जिसमें 6.8 प्रतिशत वसा होता है। ये भैंसें पंजाब में दूध और डेयरी उत्पादों की मांग को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

सुरती : सुरती भैंसें मुख्यतः गुजरात के सुरत, खेडा, भरूच, और बडोदरा जिलों में पाई जाती हैं। इन्हें चारोटारी, डेक्कनी, गुजराती, नाडियाडी, और तालावडा नामों से भी जाना जाता है। इनका नाम सुरत शहर से पड़ा है। सुरती भैंसों का रंग भूरा, चमकीला ग्रे, या काला होता है। इनकी त्वचा काली या भूरी होती है, और सींग समतल, हुक के आकार के होते हैं। सुरती भैंसें मुर्रा और नीली रावी की तुलना में थोड़ी छोटी होती हैं। नर भैंस का औसत वजन 435 किलोग्राम और मादा का 401 किलोग्राम होता है। नर की ऊँचाई लगभग 133 सेंटीमीटर और मादा की 130 सेंटीमीटर होती है। जन्म के समय बछड़े का वजन औसतन 26.3 किलोग्राम और बछिया का 24.5 किलोग्राम होता है। पहली बार गर्भधारण की औसत उम्र 44.9 महीने है और दो गर्भधारण के बीच औसतन 14.8 महीने का अंतराल होता है। एक बार में ये भैंस औसतन 1667 किलोग्राम दूध देती हैं, जिसमें 7.02 प्रतिशत : वसा होता है। सुरती भैंसों का दूध उच्च वसा और सॉलिड नॉट फैट के लिए जाना जाता है। ये भैंसें मुर्रा और नीली रावी के मुकाबले कम दूध देती हैं, लेकिन उनका दूध दुग्ध उत्पादों के लिए बहुत उपयोगी होता है। सुरती भैंसें कम चारा खाती हैं और बिना हरे चारे के भी पाली जा सकती हैं। ये भैंसें छोटे और सीमांत किसानों के बीच बहुत लोकप्रिय हैं।

भदावरी : भदावरी भैंसें मुख्यतः मध्य प्रदेश के मोरेना और भिंड जिलों और उत्तर प्रदेश के इटावा और आगरा जिलों में पाई जाती हैं। इन्हें इटावा भैंस भी कहा जाता है। ये भैंसें पहले भदावर राज्य की संपत्ति थीं, और संभवतः उनका नाम इसी राज्य से आया है। इनका रंग काले तांबे से हल्के तांबे तक होता है, और पैरों का रंग गेहूँ के रंग जैसा होता है। सींग काले होते हैं, थोड़े बाहर की ओर मुड़े हुए और अंत में ऊपर की ओर मोड़े हुए होते हैं। भदावरी भैंसों की विशिष्ट पहचान गर्दन के निचले हिस्से में दो सफेद रेखाओं से होती है, जिसे कंठी कहते हैं। नर भैंस का औसत वजन 475 किलोग्राम और मादा का 410 किलोग्राम होता है। नर की ऊँचाई लगभग 126 सेंटीमीटर और मादा की 124 सेंटीमीटर होती है। जन्म के समय बछड़े का वजन औसतन 27.6 किलोग्राम और बछिया का 24.6 किलोग्राम होता है। पहली बार गर्भधारण की औसत उम्र 44.6 महीने है और दो गर्भधारण के बीच औसतन 16 महीने का अंतराल होता है। एक बार में ये भैंस औसतन 1294 किलोग्राम दूध देती हैं, जिसमें 7.88 प्रतिशत वसा होता है। ये भैंस कम गुणवत्ता वाले चारे पर भी दूध देती हैं और विशेष रूप से कोष्ठ चारा को वसा में कुशलतापूर्वक बदलने में सक्षम होती हैं।

2 उपयुक्त दुधारू पशुओं के चयन एवं खरीद के समय ध्यान देने योग्य बातें

जय प्रकाश गुप्ता, सोनी कुमारी, रमेश कुमार सिंह[1], संजीव रंजन[2]

[1]पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग, बिहार पशु महाविद्यालय पटना–14

[2]पशुधन फार्म परिसर विभाग, बिहार पशु महाविद्यालय पटना–14

दुग्ध–पशु पशुपालकों द्वारा पाला जाने वाले वैसे पशुधन हैं जिन्हें विशेष रूप से दूध उत्पादन के लिए पाला जाता है। इन पशुओं का प्रजनन एवं प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य दूध (जो मनुष्यों के लिए पोषण का एक मूल्यवान स्रोत है) उपलब्ध कराना होता है। दुनिया भर में विभिन्न प्रकार के डेयरी पशु पाले जाते हैं, और इन पशुओं का चुनाव साधारणतया जलवायु, भूगोल और सांस्कृतिक प्राथमिकताओं जैसे कारकों पर निर्भर करता है। इसके अलावा एक विशिष्ट डेयरी पशु का चयन संसाधनों की उपलब्धता तथा दूध या डेयरी उत्पादों की वांछित विशेषताओं जैसे कारकों पर भी निर्भर करता है। डेयरी पशुधन भारत के साथ–साथ वैश्विक डेयरी उद्योग की आधारशिला हैं, जो दूध और डेयरी उत्पादों के उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। डेयरी मवेशियों के चयन में विभिन्न विशेषताओं पर सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए जो सामूहिक रूप से उनकी उत्पादकता, स्वास्थ्य और अनुकूलन क्षमता इत्यादि को निर्धारित करते हैं। ये विशेषताएँ डेयरी पशुओं के समूह की दक्षता और स्थिरता को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। डेयरी मवेशियों का चयन एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न विशेषताओं पर साथ–साथ विचार करना आवश्यक है। एक संतुलित दृष्टिकोण, जिसमें दूध उत्पादन, थन संरचना, प्रजनन प्रदर्शन, स्वास्थ्य, स्वभाव, अनुकूलनशीलता और आनुवंशिक लक्षण शामिल हैंय एक उत्पादक और टिकाऊ डेयरी फार्म के विकास को सुनिश्चित करता है। पशुपालकों को इन विशेषताओं को अनुकूलित करने के लिए पशु चिकित्सा देखभाल, पोषण और प्रजनन में विशेषज्ञों के साथ संपर्क करके उनका सहयोग लेना चाहिए, जो अंततः डेयरी उद्योग की सफलता में मददगार साबित होगा।

इन विशेषताओं में सबसे प्रमुख है, डेयरी मवेशियों की दूध उत्पादन क्षमता। उच्च दूध उपज पशुओं के उत्पादन क्षमता का एक मौलिक मानदंड है। हमें ज्ञात है कि होल्स्टीन–फ्रिसियन जैसी गाय की नस्लें अपनी असाधारण उत्पादन क्षमताओं के लिए विश्व विख्यात है। हालाँकि, उच्च दुग्ध–उत्पादन के अलावा दूध की गुणवत्ता भी उतनी ही महत्वपूर्ण है, जिसमें मक्खन और पनीर जैसे डेयरी उत्पादों की संरचना को प्रभावित करने वाला, बटरफैट, एक प्रमुख कारक है। भारत जैसे देश में और खासकर बिहार जैसे राज्य में जहाँ प्रति व्यक्ति आय काफी कम है तथा संसाधन काफी सिमित हैं, सिर्फ अत्यंत उच्च उत्पादन करने वाली पशुओं का चयन यथोचित नहीं होगा। इन परिस्थितियों में बटरफैट उत्पादन क्षमता, रोग प्रतिरोधक क्षमता, उष्मीय तापरोधी क्षमता, अनुकुलानता, प्रजनन दक्षता इत्यादि पर ज्यादा बल देना चाहिए।

जब हम बात दुग्ध उत्पादन क्षमता की करें तो चयन प्रक्रिया में पशुओं के थन की संरचना

एक महत्वपूर्ण पहलू है। कुशल दूध देने के लिए उचित गहराई, चौड़ाई और जुड़ाव वाला एक सुगठित थन आवश्यक है। थन संतुलित और समरूपी होना चाहिए जिसमें चार उचित दूरी पर अवस्थित टिट्स होने चाहिए। इससे न केवल दूध निकालने में आसानी होती है बल्कि डेयरी गाय के समग्र स्वास्थ्य में भी इनकी महतवपूर्ण भूमिका होती है। डेयरी गाय के चयन के दौरान थन और थन की संरचना को कम नहीं आंका जाना चाहिए । दुधारू गायों में उचित गहराई, चौड़ाई और जुड़ाव वाला एक सुगठित थन आवश्यक है। थन संतुलित और समरूपी होना चाहिए । चार उचित दूरी पर अवस्थित टिट्स होने चाहिए जिससे दूध निकालने में आसानी होती है।

अग्र थन का जुड़ाव

थन का अगला भाग मजबूती से पेट की दीवार की निचली रेखा से जुड़ा होना चाहिए। अग्र थन के मजबूत जुड़ाव को जुड़ाव स्थल पर झुर्रियों की अनुपस्थिति से पहचाना जा सकता है।

छायाचित्र आभारः epashupalan.com

पीछे के थन की चौड़ाई

पिछले थन की चौड़ाई ऊपर से नीचे तक चौड़ी और एक समान होनी चाहिए।

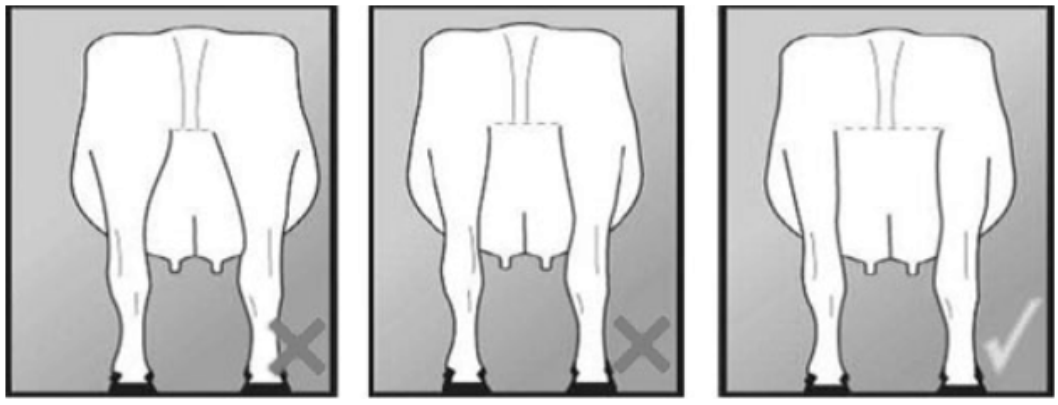

छायाचित्र आभारः epashupalan.com

थन की गहराई

थन बहुत गहरी या बहुत उथली नहीं होनी चाहिए, इष्टतम थन की गहराई तब होती है जब थन का निचला हिस्सा हॉक (पिछला घुटना) के स्तर पर होता है । यदि थन का निचला हिस्सा पिछला घुटना के स्तर से नीचे है तो इससे थनैला रोग की संभावना बढ़ जाती है और यदि यह हॉक के स्तर से ऊपर है तो पशु की दूध की पैदावार कम होगी। वहीं, थन की गहराई गाय की उम्र पर भी निर्भर करती है। सामान्य तौर पर बछड़ों के थन उथले होते हैं और बड़ी गायों के थन गहरे होते हैं।

छायाचित्र आभारः epashupalan.com

थन का फांक (थन लिगामेंट)

थन का गहरा फांक मजबूत लगाव का संकेत देता है फांक ऊपर से नीचे तक गहरी होनी चाहिए। और थन को दो हिस्सों में बाँटना चाहिए,फांक लिगामेंट से बनती है। थन की फांक एक लिगामेंट से बनी होती है जो थन को सहारा देने में 60ः योगदान देती है।

छायाचित्र आभारः epashupalan.com

टीट्स की लंबाई

बेलन आकार वाले मध्यम आकार के टीट्स को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। छोटे टीट्स के कारण दूध देना कठिन हो जाता है और नवजात बछड़ों को भी दूध पीने में कठिनाई का सामना

करना पड़ता है। लंबे टीट्स के कारण पूरा दूध निकालने के बाद भी दूध थन में ही रहता है, इसलिए संभावना है कि पशु थनैला रोग से पीड़ित हो जाये। छोटे टीट्स से मशीन से दूध निकालना भी असंभव है। इसलिए, बेलन आकार वाले मध्यम आकार के निपल्स को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

टिट्स का व्यवस्थापन

टिट्स को थन के प्रत्येक चौथाई के अंदर रखा जाना चाहिए और जमीनी स्तर से लंबवत होना चाहिए। पीछे के टिट्स की स्थिति थन के चौथाई के बाहर या अंदर की ओर नहीं होनी चाहिए।

प्रजनन प्रदर्शन क्षमता, डेयरी पशुओं के फार्म की दीर्घकालिक स्थिरता का एक प्रमुख निर्धारक है। नियमित मद चक्र और छोटे ब्याने के अंतराल की विशेषता वाली प्रजनन क्षमता महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, पशुओं में ब्याने की प्रक्रिया के दौरान जटिलताओं को कम करने के लिए तथा ब्याने में आसानी भी एक महत्वपूर्ण करक है जो पशुओं पर तनाव कम करता है।

डेयरी मवेशियों का समग्र स्वास्थ्य और रोग प्रतिरोधक क्षमता एक अहम् घटक है। मजबूत प्रतिरक्षा और सामान्य बीमारियों के प्रतिरोध वाले जानवरों का चयन डेयरी फार्म के व्यापक प्रबंधन में योगदान देता है और पशु चिकित्सा हस्तक्षेप की आवश्यकता को कम करता है। पशुओं का विनम्र स्वभाव भी वांछनीय है, क्योंकि शांत और सहयोगी मवेशियों को संभालना और प्रबंधित करना आसान होता है।

स्थानीय जलवायु और पर्यावरणीय परिस्थितियों के प्रति अनुकूलनशीलता एक ऐसा कारक है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। जो मवेशी अपने परिवेश के लिए अच्छी तरह से अनुकूलित होते हैं, उनके बेहतर, समग्र प्रदर्शन और दीर्घायु प्रदर्शित करने की संभावना अधिक होती है। इसके अलावा, आर्थिक स्थिरता के लिए फीड रूपांतरण की दक्षता महत्वपूर्ण है। वैसे डेयरी मवेशी जो प्रभावी ढंग से चारे को दूध में बदल सकते हैं, संसाधनों के कुशल उपयोग में योगदान करते हैं।

आनुवंशिक लक्षण डेयरी मवेशियों की विशेषताओं को आकार देने में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रजनन कार्यक्रमों में आनुवंशिक क्षमता और वांछनीय लक्षणों को संतानों तक

संचारित करने की क्षमता पर जरूर ध्यान देना चाहिए। डेयरी मवेशियों के शरीर के भार को वहन करने और गतिशीलता सुनिश्चित करने के लिए अच्छी तरह से संरचित पैरों और पैरों सहित संरचनात्मक सुदृढ़ता महत्वपूर्ण है।

भारत के कई अन्य राज्यों की तरह, बिहार में भी कृषि के विविध परिदृश्य है जिसमें डेयरी फार्मिंग भी शामिल है। बिहार राज्य पशुओं कि विविध नस्लों को आश्रय देने वाला एक महत्वपूर्ण राज्य है। बिहार राज्य के पशु आनुवंशिक संसाधन, खासकर गाय, मुख्यतः भारवाहक लेकिन कम दूध देनेवाली होती हैं। ऐसे में यह जरूरी है कि वर्तमान परिदृश्य में हम अपने पशुओं के आनुवंशिक उन्नयन के लिए देश में ही मौजूद अन्य नस्लों कि मदद लें। भारत देश की इन प्रमुख दुग्ध उत्पादन करने वाली गाय की नस्लों से अवर्णित गायों के संकरण तदोपरांत वांछित लक्षणों के चयन से हम उचित उत्पादन लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

3 वैज्ञानिक डेयरी फार्म प्रबंधन

मनमोहन कुमार, रंजना सिन्हा, दीप नारायण सिंह, दुष्यंत यादव एवं सुचित कुमार
पशुधन फार्म कॉम्प्लेक्स, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना

परिचय

डेयरी फार्मिंग हमारे देश में लाखों लोगों के लिए लाभकारी रोजगार और खाद्य सुरक्षा पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत में पशु आनुवंशिक संसाधनों की एक विशाल विविधता मौजूद है, जिसमें देश के विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्रों में फैली लगभग 53 स्वदेशी मवेशियों(गायें) की नस्लें शामिल हैं। 20वीं पशुधन गणना के अनुसार, भारत में 192. 49 मिलियन मवेशी हैं, जिनमें 142.11 मिलियन स्वदेशी/गैर–वर्णित और 50. 42 मिलियन क्रॉसब्रेड/विदेशी प्रमुख हैं। हमारा देश 1998 से दुनिया का शीर्ष दूध उत्पादक देश है। उत्पादकता की दृष्टि से अर्थात् प्रति पशु दुग्ध उत्पादन के परिपेक्ष्य में आज भी हमारा देश विकसित देशों की तुलना में अभी बहुत पीछे है। आजादी के समय भारत में दूध का उत्पादन केवल 17 मिलियन टन था, जो 2022–23 में बढ़कर 230. 6 मिलियन टन हो गया है और प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता करीब 459 ग्राम/दिन (डीएएचडी, 2023) है । वर्तमान में भारत दूध उत्पादन में पहले स्थान पर है जो कुल वैश्विक दूध उत्पादन में 25 प्रतिशत का योगदान देता है। मानव जनसंख्या के बढते दबाव के करण डेयरी को व्यवसाय में विकसित करने की आवश्यकता ताकि उपलब्ध भूमि में वैज्ञानिक तरीके से दुधारू पशुओं की अधिकतम क्षमता का दोहन किया जा सके। डेयरी व्यवसाय लाखों ग्रामीण परिवारों के लिए आय के अवसर और रोजगार प्रदान करने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । वैज्ञानिक डेयरी फार्म प्रबंधन (Scientific Dairy Farm Management) का उद्देश्य डेयरी उत्पादन को अधिक कुशल, स्वस्थ, और लाभकारी बनाना है। इसमें कई महत्वपूर्ण घटक शामिल हैं:

1. पशु चयन और प्रजननः

पशु चयन और प्रजनन पशुपालन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसका उद्देश्य उच्च गुणवत्ता वाले पशुओं का चयन और प्रजनन करना होता है ताकि वे अधिक उत्पादन कर सकें और बेहतर स्वास्थ्य में रह सकें। पशु चयन करने के दौरान हमें उत्पादन क्षमता (उच्च दूध उत्पादन, अधिक मांस उत्पादन, अंडे देने की क्षमता आदि जैसे गुण), स्वास्थ्य (स्वस्थ और रोग मुक्त पशुओं का चयन), शारीरिक विशेषताएं (शरीर की संरचना, आकार, वजन आदि), वंशावली (अच्छे वंशावली वाले पशुओं का चयन) इत्यादि विषयों पर भी ध्यान देना चाहिए ताकि पशु उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। साथ ही साथ पशु प्रजनन की क्षेत्र में आज भी हमारे देश में ग्रामीण स्तर पर प्राकृतिक प्रजनन का उपयोग किया जा रहा है जिसके तहत पशुओं को स्वाभाविक रूप से प्रजनन करने दिया जाता है। इसमें मादा और नर पशु को साथ रखा जाता है। परंतु उत्पादन के दृष्टिकोण से यह लाभकारी नही माना जाता है। इसके विपरीत कृत्रिम गर्भाधान के जरिए

आधुनिक तकनीक के जरिए मादा पशु में नर पशु का वीर्य प्रविष्ट किया जाता है। इससे अधिक गुणवत्ता वाले पशु प्राप्त किए जा सकते हैं। वर्तमान समय में हमारे देश में भी आई. वी. एफ. और ई. टी. टी. जैसी अत्याधुनिक तकनीकें पशुओं में नस्ल सुधार और दूध उत्पादन बढ़ाने की दिशा में सफलतापूर्वक काम कर रही हैं। इसके अलावा जीनोटाइपिंग, आनुवंशिक सुधार (अच्छे आनुवंशिक गुणों वाले पशुओं का चयन एवं उनके प्रजनन) से बेहतर नस्ल के पशु उत्पन्न किए जाते हैं। इस प्रकार, पशु चयन और प्रजनन के माध्यम से बेहतर नस्ल के पशुओं का पालन किया जा सकता है, जिससे पशुपालक को आर्थिक लाभ मिलता है और पशु स्वास्थ्य भी बेहतर होता है।

2. पोषण प्रबंधनः

पशु पोषण प्रबंधन सफल पशुपालन की महत्वपूर्ण कुंजी है क्योंकि सही पोषण प्रबंधन से पशुओं की सेहत, उत्पादन क्षमता और जीवनकाल को बढ़ाया जा सकता है। पशु पोषण प्रबंधन पशुपालन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है क्योंकि कुल खर्च का 60 से 70 प्रतिशत पशु पोषण पर खर्च होता है। प्रजनन प्रक्रिया में पोषण का खास ध्यान रखना चाहिए ताकि पशु स्वस्थ रहें और अच्छी उत्पादन क्षमता बनाए रखें। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पशु पोषण प्रबंधन हेतु संतुलित आहार प्रदान करना और फीड एवं फीडिंग तकनीकों में सुधार अत्यावश्यक है। इस दिशा में टोटल मिक्स राशन (टीएमआर) एक अच्छी पहल है।

टोटल मिक्स राशन (टीएमआर)

विकसित देशों में 1950 के दशक से "संपूर्ण राशन" या टीएमआर खिलाने का चलन रहा है। टोटल मिक्स राशन (टीएमआर) डेयरी मवेशियों और भैंसों को पोषक तत्व पहुंचाने की एक कुशल प्रणाली है। पारंपरिक टीएमआर में, डेयरी पशुओं को संतुलित राशन प्रदान करने के लिए कटा हुआ हरा चारा या साइलेज , अनाज उप–उत्पाद, प्रोटीन स्रोत, खनिज, विटामिन और फ़ीड एडिटिव्स के साथ मिश्रित किया जाता है। हालाँकि, भारत में प्रचलित लघु धारक डेयरी उत्पादन प्रणाली में, फसल अवशेष आधारित टीएमआर (जिसे 'सूखा टीएमआर' भी कहा जाता है) अधिक उपयुक्त है।

पारंपरिक टीएमआर के विपरीत इसे आसानी से ले जाया जा सकता है और कम से कम 2–3 सप्ताह तक संग्रहीत किया जा सकता है। शुष्क टीएमआर यह बेहतर फ़ीड सेवन को सक्षम बनाता है, फ़ीड की बर्बादी को कम करता है, स्थिर रुमेन वातावरण बनाए रखता है और पाचन क्षमता में सुधार करता है। साथ ही साथ इस टीएमआर के रेशेयुक्त हिस्से में मुख्य रूप से फसल के अवशेष जैसे गेहूं का भूसा, धान का भूसा, सूखे गन्ने के शीर्ष आदि शामिल हैं, जो स्थानीय स्तर पर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इन फसल अवशेषों को शामिल करने से उन्हें खेतों में जलाने से रोका जा सकता है, जिससे पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सकता है।

कुशल पशु पोषण प्रबंधन के मुख्य तत्वः

1. आहार संतुलनः

ऊर्जाः पशुओं को पर्याप्त ऊर्जा देने वाले आहार में अनाज, मक्का, बाजरा आदि शामिल होते हैं।

प्रोटीनः दूध उत्पादन और मांसपेशियों की वृद्धि के लिए प्रोटीन आवश्यक है। इसके लिए सोयाबीन, अल्फाल्फा और अन्य प्रोटीनयुक्त फसलों का उपयोग करें।

विटामिन और खनिजः विटामिन ए, डी, ई, कैल्शियम, फॉस्फोरस आदि महत्वपूर्ण हैं। इन्हें आहार में शामिल करने के लिए मिनरल ब्लॉक्स और विटामिन सप्लीमेंट्स का प्रयोग करें।

2. पानीः

स्वच्छ और ताजा पानी हमेशा उपलब्ध होना चाहिए। पानी की कमी से पशुओं में उत्पादन क्षमता कम हो सकती है और वे बीमार भी हो सकते हैं।

3. चारागाह प्रबंधनः

हरे चारे का प्रबंधन महत्वपूर्ण है। चारागाह में पौष्टिक घास और फसलों को उगाएं और उन्हें सही समय पर कटाई करें। हरे चारे में नेपियर घास, बरसीम, जई आदि शामिल हो सकते हैं।

भारत में चारा उत्पादन की आवश्यकता एवं स्थिति

	आवश्यकता (MT)	उपलब्धता (MT)	कमी (%)
सूखा चारा	827	734.2	11.24
हरा चारा	426	326.4	23.4

4. आहार की मात्रा और समयः

पशुओं को सही मात्रा में और नियमित समय पर आहार देना चाहिए। अधिक या कम आहार से पशु की सेहत प्रभावित हो सकती है। आहार को छोटे–छोटे हिस्सों में बांटकर दिन में कई बार देना चाहिए।

5. आहार परिवर्तनः

आहार में अचानक परिवर्तन से बचना चाहिए। धीरे–धीरे और क्रमिक रूप से नए आहार को पुराने

आहार में मिलाएं। आहार परिवर्तन के समय पशुओं की निगरानी करें।

6. सप्लीमेंट्स और एडिटिव्सः

आवश्यकता अनुसार खनिज और विटामिन सप्लीमेंट्स का उपयोग करें। प्री–बायोटिक्स और प्रो–बायोटिक्स का उपयोग पाचन में सुधार के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार, वैज्ञानिक पोषण प्रबंधन से पशुओं की सेहत और उत्पादकता में महत्वपूर्ण सुधार हो सकता है, जिससे पशुपालक को अधिक लाभ मिलता है।

3. स्वास्थ्य प्रबंधनः

उत्पादन के दृष्टि से पशु स्वास्थय का बड़ा महत्व है। यह सुनिश्चित करता है कि पशु स्वस्थ रहें, अधिक उत्पादक बनें और रोगों से सुरक्षित रहें। नियमित टीकाकरण, परजीवी नियंत्रण और बीमारियों का शीघ्र निदान एवं उपचार पशु स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए आवश्यक हैं। पशुओं की नियमित स्वास्थ्य जांच, पेशेवर पशु चिकित्सक से समय–समय पर परामर्श, टीकाकरण शेड्यूल का पालन, आंतरिक और बाह्य परजीवियों जैसे कि कृमि, जूं और पिस्सू से बचाव के लिए दवाओं का नियमित उपयोग, बीमार पशुओं को तुरंत आइसोलेशन इत्यादि पहलुओं पर ध्यान देना वैज्ञानिक दृष्टिकोण से स्वास्थ्य प्रबंधन हेतु अति महत्वपूर्ण है। इसके अलावा स्वच्छता और आवास (पशुओं के रहने की जगह साफ और हवादार, बिस्तर सामग्री को नियमित रूप से बदलें और कीटाणुरहित करें एवं पशुओं को मौसम के अनुसार आरामदायक वातावरण प्रदान करें) पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। आहार में अचानक परिवर्तन से बचना चाहिए, क्योंकि यह अन्य प्रकार के मेटाबोलिक बिमारियों को जन्म देने के साथ दुग्ध उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। आहार की सही मात्रा और गुणवत्ता पर ध्यान देना आवश्यक है। मादा पशुओं के प्रजनन चक्र, प्रसव के समय और उसके बाद विशेष देखभाल करना चाहिए। पशुओं को अत्यधिक तनाव से बचाना एवं उनके लिए आरामदायक और शांतिपूर्ण वातावरण प्रदान उन्हें रोगों से ग्रसित होने से बचाता है। इन सभी उपायों को अपनाकर पशु स्वास्थ्य प्रबंधन को प्रभावी बनाया जा सकता है, जिससे पशु स्वस्थ और उत्पादक बने रहते हैं और पशुपालकों को अधिक लाभ होता है।

4. दूध उत्पादन प्रबंधनः

विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने डेयरी फार्म और दूध उत्पादन में काम की दक्षता में भी सुधार किया है। दूध देने वाली गायों को प्रतिदिन दो या तीन बार दूध दुहने की आवश्यकता होती है। दूध देने वाली मशीनों के आविष्कार से पहले यह काम हाथ से किया जाता था और आज भी अधिकाँश स्थान पर इसका उपयोग होता है। यह कठिन काम है और दूध को बाल्टी में डालने में समय लगता है और इस प्रक्रिया में दूध के संक्रमित होने की आशंका बनी रहती है है। मशीन मिल्किंग के उपयोग से यह काम पांच से सात मिनट में पूरा किया जाता है, परिणामस्वरूप अधिक दूध उत्पादन, स्वच्छ दुग्ध संग्रहण जैसे अन्य विशेषताओं के कारण यह काफी प्रचलित हुआ है। गायों में बंद प्रणाली के उपयोग से अपशिष्ट को खत्म करने और दूध को संदूषण से सुरक्षित रखने में मदद मिलती है। ।

प्रत्येक दुग्ध इकाई गाय से दूध एकत्र करने के पश्यात इसे पाइप लाइन के माध्यम से भंडारण टैंक में भेजा जाता है जहाँ प्रसंस्करण संयंत्र में भेजने से पहले इसे ठंडा किया जाता है।

5. पर्यावरणीय प्रबंधनः

दूध देने वाली गायें दूध के साथ साथ एक अन्य अपशिष्ट उत्पाद गोबर एवं मूत्र भी पैदा करती हैं । गोबर कृषि पशुओं का ठोस अपशिष्ट है। डेयरी फार्म में अपशिष्ट प्रबंधन(मल–मूत्र का उचित निपटान) बहुत आवश्यक है। डेयरी फार्म पर, गोबर का मैनेजमेंट महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें बहुत कुछ है। प्रत्येक डेयरी के पास अपशिष्ट प्रबंधन की एक योजना होती है। किसान के दृष्टिकोण के आधार पर, गोबर या तो एक समस्या है या एक संपत्ति। आज किसान अपने गाय के गोबर को विभिन्न रूपों (कम्पोस्ट खाद, उर्वरक, वर्मी कम्पोस्ट, इत्यादि) में परिवर्तित कर अपनी आय को बढ़ा रहे हैं साथ ही साथ गोबर के विघटित होने उत्पन्न से मीथेन गैस जो की हानिकारक है ,के दुष्प्रभाव से भी पर्यावरण को बचा रहे हैं। गोबर का उपयोग नवीकरणीय ऊर्जा के उत्पादन के लिए भी किया जा सकता है। चूँकि डेयरियाँ भारी मात्रा में गोबर का उत्पादन करती हैं, इसलिए समस्या के समाधान की आवश्यकता है। आज, डेयरी फार्म गाय के गोबर को नवीकरणीय ऊर्जा में परिवर्तित करने के लिए मीथेन डाइजेस्टर सिस्टम का उपयोग कर सकते हैं। फिर बायोएनेर्जी का उपयोग बिजली का उत्पादन करने के लिए किया जाता है जिसे खेत में इस्तेमाल किया जा सकता है या बेचा जा सकता है।

6. रिकॉर्ड कीपिंगः

किसानों के लिए फार्म प्रबंधन के वर्तमान और भविष्य पर पूर्ण नियंत्रण रखने के लिए फार्म रिकॉर्ड रखना बेहद महत्वपूर्ण है। यह पशु कल्याण और व्यावसायिक उत्पादकता में सुधार करने और वित्तीय नुकसान से बचने की अनुमति देता है। पशुओं का उत्पादन, प्रजनन और स्वास्थ्य रिकॉर्ड

रखना एवं डेटा विश्लेषण से निर्णय लेना इत्यादि के साथ साथ पशु पहचान रिकॉर्ड, ब्याने की रिपोर्ट, दूध की पैदावार का रिकॉर्ड, विकास रिकार्ड, फीडिंग रिकार्ड, स्वास्थ्य और उपचार रिकॉर्ड, प्रजनन अभिलेख, पशु इतिहास अभिलेख, वित्तीय रिकॉर्ड इसके कुछ महत्वपूर्ण पहलु है। फार्म रिकॉर्ड रखना फार्म प्रबंधन में सबसे उपेक्षित गतिविधियों में से एक है। किसान रिकॉर्ड रखने को समय खर्च करने वाला काम मानते हैं इसलिए वे अक्सर इस प्रथा को नजरअंदाज कर देते हैं। हालाँकि, पशु कल्याण और फार्म प्रबंधन दोनों में सुधार के लिए फार्म में क्या हो रहा है, इस पर नज़र रखना सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक है।

7. प्रशिक्षण और शिक्षाः

समय समय पर कार्यशालाओं और सेमिनारों के आयोजन किसानों को नवीनतम तकनीकों और प्रथाओं की जानकारी सुनिश्चित करने हेतु आवश्यक है । विस्तार एजेंसी को विस्तार कार्यक्रमों को ग्रामीण जनता तक ले जाना है; अर्थात् कृषि, पशुपालन, गृह प्रबंधन आदि की उन्नत विधियों का बुनियादी ज्ञान देना है, जिससे वे प्रति एकड़, प्रति पशु कृषि उत्पादन बढ़ाने में सक्षम होंगे तथा उनके जीवन स्तर में भी सुधार होगा। विस्तार एजेन्सी ग्रामीणों को फसल और पशुपालन में मदद करती है ताकि उनकी आय बढ़े। इससे ग्रामीण जनता को गांवों में संगठित तरीके से रहने के अवसरों, कर्तव्यों और विशेषाधिकारों की सराहना करने में भी मदद मिलती है।

निष्कर्ष

विभिन्न वैज्ञानिक जाँच परिणाम के आधार पर प्रायः ऐसा देखा जाता है की भूमिहीन किसानो में वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रति कम आकर्षण रहा है इसका मुख्य कारण गरीबी और आर्थिक तंगी हो सकते हैं। यधपि अन्य सभी श्रेणियाँ अर्थात छोटे, मध्यम और बड़े डेयरी किसान में इसके प्रति आकर्षणस्तर काफी उच्च पाया जाता है। उपरोक्त वर्णित सभी घटक मिलकर डेयरी फार्म को अधिक उत्पादक और लाभकारी बनाने में मदद करते हैं, साथ ही पशुओं के स्वास्थ्य और कल्याण को भी सुनिश्चित करते हैं।

4 हे एवं साइलेज बनाने की विधि एवं संरक्षण

कौशलेन्द्र कुमार

सह–प्रध्यापक, पशु पोषण विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना

परिचय

डेयरी किसानों के लिए उच्च गुणवत्ता वाले चारे की उपलब्धता महत्वपूर्ण है। साइलेज एवं हे दो सामान्यतः प्रयुक्त विधियाँ हैं जिससे डेयरी पशुओं के लिए हरे चारे का संरक्षण किया जाता है। देश में हरा चारा और सूखा चारा की मांग क्रमशः 1134 मिलियन टन और 630 मिलियन टन है, जबकि आपूर्ति 405.9 मिलियन टन हरा चारा और 473 मिलियन टन सूखा चारा उपलब्ध है (आईजीएफआरआई, 2012)। भारत की जलवायु विविधताओं के कारण देश में सभी समय सालोंभर पशुओं के लिए हरा चारा उपलब्ध नहीं हो पाता है, जिसके कारण पशुओं में भोजन सम्बन्धी समस्या रहती है एवं उत्पादन कम हो जाता है। लेकिन विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उन्नति के कारण हम चारे की आवश्यकता को कम कर सकते हैं तथा अभाव की अवधि (नवम्बर–जनवरी और मई–जून) में साइलेज तथा हे के रूप में हरे चारे का संरक्षण एक बेहतर विकल्प है। इन विधियों द्वारा हरे चारे की गुणवत्ता को बनाये रखा जा सकता है। संरक्षित चारों को खिलाकर हम पशुओं से उस समय भी अच्छा उत्पादन प्राप्त कर सकतें हैं, जब हरे चारे की अत्याधिक कमी रहती है।

1. साइलेज

अधिक नमी वाले हरे चारे को हवा रहित नियंत्रित किण्वन विधि द्वारा तैयार किया जाता है, जिसको साइलेज कहते हैं। साइलेज बनाने के लिए विशेष प्रकार के गडढ़े अथवा संरचना की आवश्यकता होती है जिसे 'साइलो' कहते हैं। जब हरे चारे को काटकर हवा की अनुपस्थिति में किण्वित किया जाता हैं तो लैक्टिक अम्ल पैदा होता है। यह अम्ल हरे चारे को अधिक समय तक सुरक्षित रखने में सहायक होता है।

साइलेज बनाने के लिए उत्तम फसलें

अच्छा साइलेज बनाने के लिए यह आवश्यक है कि फसल का चुनाव अच्छी प्रकार से किया जाना अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है, साथ ही उसे ठीक अवस्था में काट कर कुट्टी की जाय। जिस चारे की फसल में किण्वन के लिए घुलनशील शर्करा की समुचित मात्रा नहीं होगी, उससे अच्छा साइलेज नहीं बनता है। अच्छा साइलेज बनाने के लिए चारा फसलों की कटाई प्रायः फूल आने की अवस्था या फिर दानों के दुग्धावस्था में करनी चाहिए। अनाज वाली हरी फसलें जैसे मक्का, बाजरा, जई, ज्वार इत्यादि साइलेज बनाने के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं। इन फसलों में शर्करा की अधिक मात्रा होने के कारण प्राकृतिक किण्वन अच्छा होता है। हाइब्रिड नेपियर भी

साइलेज बनाने के लिए एक उपयुक्त चारा फसल माना जाता है। दलहनी फसलें साइलेज के लिए इतनी उपयुक्त नहीं होती है क्योंकि इसमें शर्करा की मात्रा कम तथा प्रोटीन अधिक होती है। परन्तु दलहनी फसलों के साथ अगोला तथा धान का हरा पौधा मिलाकर (4:1) व उसके ऊपर लगभग 3–5 प्रतिशत शीरा मिलाकर उत्तम किस्म का साइलेज तैयार कर सकते हैं। घुलनशील शर्करा के टूटने के कारण पी.एच. घट कर 3.8–4.2 तक आ जाता है। इस पी.एच. पर साइलेज में शुष्क पदार्थ के आधार पर लैक्टिक अम्ल की मात्रा 8–12 प्रतिशत होती है। इस प्रकार के साइलेज को एक अच्छे साइलेज की संज्ञा दी जाती है।

साइलेज बनाने की विधि

साइलेज बनाने के लिए ऐसे हरे चारे जिसमें शुष्क पदार्थ की मात्रा 25–30 प्रतिशत हो, उसका कुट्टी बनाकर साइलेज बनाने वाले गड्ढों में अच्छे तरीके से दबा कर इस प्रकार भरा जाना चाहिए कि कटे हुए चारे के बीच में कम से कम हवा उपस्थित रहे। हवा निकलने से किण्वन शीघ्र प्रारम्भ हो जाता है। कुट्टी बनाने से कम जगह में अधिक चारा भरा जा सकता है तथा लैक्टिक अम्ल बनाने वाले जीवाणुओं के लिए अधिक रस मिलता है। चारे को साइलो की दीवारों से 2–3 फुट ऊँचाई तक भरें, जिससे कि दबने पर भी बना हुआ साइलेज जमीन के स्तर से ऊपर रहे तथा बरसात का पानी गड्ढों में न जाय। गड्ढों को भरने के बाद पॉलीथीन की चादर से ढक कर हवा रहित करना चाहिए। गड्ढे के उपर गीली मिट्टी या गोबर का लेप करके भी हवा रहित किया जा सकता है।

खिलाने की विधि

अच्छी प्रकार से बनाया हुआ साइलेज 40–45 दिन में पशुओं को खिलाने योग्य हो जाता है। सबसे पहले मिट्टी की परत को सावधानी पूर्वक हटा लेना चाहिए तथा इसके बाद पॉलीथीन की चादर को एक किनारे से हटाना चाहिए। साइलेज को आवश्यकतानुसार सावधानी से निकालकर पशु को खिलाना चाहिए जिससे कि साइलेज का कम से कम मात्रा में बाहरी हवा से सम्पर्क हो सकेए अन्यथा साइलेज के खराब होने की संभावना रहती है।

अच्छा साइलेज बनाने एवं पशुओं को खिलाने हेतु आवश्यक बातें

1. साइलेज बनाने वाला गड्ढ़ा उस स्थान पर होना चाहिए जहाँ बरसात का पानी न जा सके।
2. हरे चारे में नमी का प्रतिशत 65 से 75 के बीच होना चाहिए।
3. हरे चारे को कुट्टी बनाकर ही गड्ढ़ों में भरना चाहिए।
4. साइलो अथवा गड्ढ़ों से अधिकतम वायु को निष्कासित कर देना चाहिए।
5. पशुओं को सुरूआत में 5 किलो साइलेज देना चाहिए, उसके बाद धीरे–धीरे हरे चारे जितना साइलेज का उपयोग कर सकते हैं।

पशुपालन में साइलेज के फायदे

- दुधारू पशुओं के लिए निरंतर चारे की उपलब्धता।
- सभी मौसम में एक सामान गुणवत्ता के चारे का मिलना।
- सभी मौसम में साइलेज तैयार होना।
- हरे चारे की अधिकता होने पर उसको साइलेज के रूप में संरक्षित करना तथा हरे चारे को बर्वादी से बचाना।
- साइलेज खिलाकर पशुओं को किर्मी संबंधित रोगों से बचाना।
- हरे चारे की कमी के मौसम में, दुधारू पशुओं को साइलेज उपलब्ध करवाकर उसके उत्पादन क्षमता को बरकरार रखना।

2. हे

सुखाये हुए हरे चारे को हे कहते है। 'हे' इस प्रकार बनाना चाहिए कि चारे का हरापन बना रहे एवं उसका पोषक तत्व में हानि न हो। उत्तर भारत में हे तैयार करने का सबसे उपयुक्त समय मार्च–अप्रैल है। उस समय आसमान में धूप अच्छी तथा आर्द्रता कम होती है, जिससे चारा जल्दी से सूख कर अच्छा 'हे' तैयार हो जाता है।

हे बनाने की विधि

हे बनाने में हरे चारे को अच्छी प्रकार और समान रूप से धूप एवं हवा में सुखाना चाहिये। जमीन पर फैलाकर सुखाने से भी 'हे' तैयार किया जा सकता है। इसके लिए चारे को काटने के बाद जमीन पर 25–30 सें.मी. मोटी परतों में फैलाकर धूप में सुखाया जाता है। यदि धूप अधिक तेज न हो तो हरे चारे को अधिक पतली सतहों में फैलाया जाता है। जब चारे की अधिकांश ऊपरी पत्तियाँ सूख जाती है एवं इनमें थोड़ा कुरकुरापन आ जाता है तो चारे को छोटे–छोटे ढेरो में इकट्ठा कर लिया जाता है। मार्च–अप्रैल के महीने में चारे को इतना सूखने में 5–6 घंटे लगते हैं। बनाये गये ढेरो की पत्तियाँ जब सूख जाय, परन्तु मुड़ने पर एकदम न टूटे, इससे पहले ही चारे को पलट लेना चाहिए। चारे के ढेरो को ढीला रखा जाता है जिससे उसमें हवा आती–जाती रहे। उलट–पलट का कार्य दूसरे दिन प्रातःकाल में ही कर लेना चाहिये, क्योंकि उस समय पत्तियों में कुरकुरापन कम होता है। दूसरे दिन शाम को इन छोटी–छोटी ढ़ेरियों को इकट्ठा कर लेना चाहिए। पुनः इन सूखे ढ़ेरों को अगले दिन तक पड़े रहने देना चाहिए जिससे कि भण्डारण से पूर्व चारा पूरी तरह सूख जाय। तैयार की हुई हे को छप्पर या अन्य किसी सुरक्षित स्थान में भण्डारित कर लेना चाहिए।

'हे' बनाने के लिए उपयुक्त फसलें

बरसीम, रिजका, लोबिया, सोयाबीन, जई, सुडान घास आदि हे बनाने के लिए उत्तम फसलें हैं। इसके अतिरिक्त अक्टूबर में मक्का और ज्वार से भी हे तैयार किया जा सकता है।

'हे' बनाने में सावधानियाँ

अच्छी गुणवत्ता वाला हे तैयार करने में निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए:

1. हे बनाने के लिए फसल की कटाई प्रातःकाल की ओस समाप्त होने के बाद ही करनी चाहिए।
2. हे के गुणों पर फसल की अवस्था का काफी प्रभाव पड़ता है। इसलिए फसल की कटाई पुष्पावस्था में करना अच्छा होता है, क्योंकि अधिक पकी हुई फसल के हे की गुणवत्ता अच्छी नहीं होती।
3. फसल को ठीक से सुखाना चाहिये अन्यथा भण्डारण के दौरान उष्मा पैदा होती है, जिससे उसका पोषक तत्व कम होता है तथा उसके सड़ने की भी सम्भावना रहती है।
4. हे में नमी की मात्रा 15 प्रतिशत के अन्दर ही होना चाहिए, अन्यथा उसमें फफूदी लगने की संभावना रहती है एवं इस प्रकार के हे को पशुओं को खिलाने पर पशु बीमार भी हो सकते हैं।

पशुपालन में हे के फायदे

- प्रोटीन की अधिकता वाले हरे चारे का संरक्षण कर सालोभर सभी मौसम में पशुओं को उपलब्ध करवाना।
- कम लागत में हरे चारे का संरक्षण।
- दाना मिश्रण की खपत को कम करने में इसका उपयोग करना, जिससे पशुपालकों के दैनिक खर्चे में कमी हो सके।
- हरे चारे की बर्वादी को रोकना तथा चारे की कमी के समय उपयोग में लाना।
- सूखे घास की गाठ बनाकर ढुलाई को आसान बनाना।

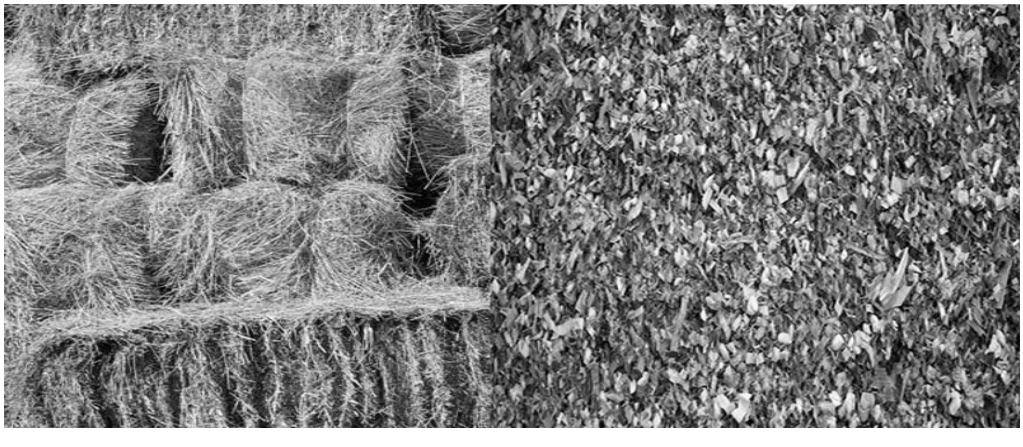

हे साइलेज

5 हे द्वारा हरा चारा संरक्षण

धर्मेन्द्र कुमार
पशु पोषण विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय,
बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना, बिहार–800014

इसमे हरे चारे कि फसल को उपर्युक्त पौष्टिक अवस्था में काटकर उस समय तक सुखाया जाता है जब तक कि उसमें नमी 15% या इससे कम न हो जाये। "हे" बनाते समय चारे का हरा रंग, पत्तियाँ एवं पोषक तत्व क्षीतग्रस्त न हों, इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

"हे" में पोषक तत्वों की मात्रा निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करती हैः–

1. फसल की अवस्था

"हे" बनाने के लिए फसल की कटाई उचित अवस्था पर करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ऐसी फसल जो पकने की अवस्था में पहुंच रही हो, इस अवस्था में पौधे कड़े एवं शुष्क हो जातें हैं, उनमें रेशेदार तत्वों की मात्रा अधिक हो जाती है, पाचनशीलता घट जाती है एवं पोषक तत्वों का स्तर कम हो जाता है। इसी प्रकार प्रारम्भिक अवस्था में काटी गयी नयी फसलें भी "हे" बनाने हेतु उपयुक्त नहीं होती, क्योंकि इस अवस्था में नमी अधिक होने के कारण सुखाना कठिन होता है। इस अवस्था में पौधों में निहित पोषक तत्वों की मात्रा एवं अनुपात भी अच्छा नहीं रहता। मक्का, ज्वार आदि फसलों के तने ठोस एवं कठोर होते हैं, परन्तु पत्तियाँ चपटी एवं पतली होती हैं। इसे सुखाने पर तने देर से सूखतें हैं एवं पत्तियाँ सुखकर झड़ने लगती हैं। ऐसी फसलों में तनों को लकड़ी के रोलर अथवा हथौड़ी की सहायता से दबाकर तोड़ना अच्छा रहता है। ऐसा करने से तनों में दरारें पड़ जाती हैं व सूखने की प्रक्रिया में तेजी आ जाती है। इस प्रक्रिया में पत्तियों को अधिक नुकसान नहीं पहुँचना चाहिए, क्योंकि सूखने पर ऐसी पत्तियाँ झड़ जाती हैं। चारे की समस्त फसलों में अन्य भागों की अपेक्षा पत्तियों में प्रोटीन की मात्रा अधिक रहती है, अतः "हे" बनाने में पत्तियों को कम से कम क्षति पहुँचानी चाहिए।

2. फसल की किस्म

चारे की वह समस्त फसलें जिन्हें हरी अवस्था में पशुओं को खिलाया जा सकता है, "हे" बनाने के लिए उपयुक्त हैं। इनमें से कुछ सर्वाधिक उपयुक्त आसानी से "हे" बनाने वाली किस्में निम्मानुसार हैंः–

फलीदार फसलेंः– रिजका, बरसीम, लोबीया, ग्वार, राईसबीन।

दाने वाली फसलेंः– जई, बाजरा, ज्वार।

चारा फसलेंः– अंजन, नेपियर, दीनानाथ आदि।

3. चारे की कटाई

"हे" बनाने के लिए सामान्य रूप से फलीदार फसलों को पुष्प अवस्था के प्रारंभ से लेकर मध्य तक काटना चाहिए। बरसीम को पुष्प अवस्था के प्रारंभ में काटना चाहिए। रिजका को मध्य पुष्प अवस्था में काटा जाना चाहिए। दाने वाली फसलों को पुष्पावस्था के प्रारंभ में काटना चाहिए। चारे की घास किस्मों को पूर्ण पुष्पावस्था से पहले काटी जानी चाहिए। संकर नेपियर की कटाई उस समय करें, जब पौधे की ऊंचाई

1 मीटर हो जाये।

4. कटाई का समय

चारा फसल की कटाई उपरोक्तनुसार उचित अवस्था एवं किस्मों को ध्यान में रखते हुए तब करें जब उसे स्वाभाविक रूप से सिंचाई की आवश्यकता हो। इस समय पौधों में आर्द्रता कम होने के कारण इन्हें सुखाना कठिन नहीं होता है।

5. सुखाने की विधि

कटाई के बाद पौधों को चारा काटने की मशीन पर छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लेने से इन्हें सुखाना सरल हो जाता है। इस प्रकार काटे गये चारे को पतली परतों में छायादार स्थान में फैलाकर सुखाना चाहिए। सूर्य की सीधी किरणों में सुखाने से हरा रंग नष्ट हो जाता है एवं पौष्टिकता घट जाती है। दिन के समय इसे सुखाते हुए हर 4 घंटों में पलटना चाहिए, जिससे नीचे का गीला चारा ऊपर आकर सूख जाता है। रात्रि के समय चारे को समेट कर शंकुवाकार बना देने से बरसात होने पर भी भीगने से बच जाता है।

6. भण्डारण की विधियाँ

वायुमण्डल में निहित आर्द्रता एवं मौसम के अनुसार हरे चारे को सूखने में 2 – 4 दिन का समय लग जाता है। तत्पश्चात् इसे सावधानीपूर्वक उठाकर नमी–रहित स्थान में भण्डारण हेतु रखना चाहिए। जहां पर कुट्टी बनाना संभव न हो वहां समूचे पौधे को सुखाकर भण्डारण हेतु ढ़ेर के रूप में रखना चाहिए। नम स्थानों पर त्रुटिपूर्ण भण्डारण से "हे" में नमी का स्तर बढ़ जाता है। इस अवस्था में इसमें फफूंद एवं जीवाणुओं के हानिकारक प्रभाव दिखाई देने लगते हैं। कभी–कभी भण्डारित "हे" में अधिक नमी हो जाने के कारण जीवाणुओं के खास क्रिया से अधिक गर्मी पैदा हो जाती है, जिससे सूखा चारा धुम्रयुक्त होकर काला पड़ जाता है।

7. भण्डारण हेतु उचित स्थान

"हे" का भण्डारण ऐसे स्थान पर करें जहाँ दीमक एवं चूहों का प्रकोप न हो, साथ ही बरसात का पानी इकट्ठा न हो एवं इस प्रकार से कि बरसात होने पर "हे" अधिक मात्रा में खराब न हो। "हे" के भण्डारण के लिए नमीरहित स्थान का होना आवश्यक है। अधिक वर्षा वाले स्थानों पर चारे को सुखाना कठिन होता है, जिससे उचित प्रकार से संरक्षण नहीं हो पाता। ऐसी परिस्थितियों

में हरे चारे को सुखाने में विशेष ध्यान रखना चाहिए।

8. "हे" बनाने की विधि

"हे" बनाने के लिए उपयुक्त चारा फसलों को उचित अवस्था में कटाई करें। चारा फसल की कटाई जमीन की सतह से 6 इंच ऊपर से करें, ताकि इसे पुनः बढ़ने में आसानी हो। चारा फसल की कटाई सुबह के समय करें, ताकि इसे दिन के समय धूप में सूखने का समय मिल सके। काटी गई चारा फसल को 2 दिनों तक धूप में सुखायें। दिन के समय इसे 4 घंटे के अंतराल से पलटें, ताकि पूरी धास समान रूप से सूख सके। तत्पश्चात् इसे 2 दिनों तक छाया में सुखायें। इस समय नमी 15ः के लगभग हो जाती है एवं हरापन बरकरार रहता है। अब इसे शंकुवाकार या खड़ी स्थिति में इकट्ठा कर के रखें। पशुओं को खिलाने से पहले इसे छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर कुट्टी बना लें। इसे प्रतिदिन प्रति पशु 2–5 किग्रा. प्रति 100 किग्रा. भार की दर से खिलायें।

हरे चारे को काटकर सुखाना

सुखाने के बाद मशीन द्वारा बण्डल बनाना

हे का बण्डल

सूखे चारे का पेलेट बनाना

6 पशु पालकों द्वारा साल भर हरे चारे की उपलब्धता

धर्मेन्द्र कुमार

पशु पोषण विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय,

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना, बिहार–800014

परंपरागत रूप से हरा चारा डेयरी पशुओं के लिए प्राकृतिक चारा है। आज के संदर्भ में, हरा चारा अत्यधिक पौष्टिक, स्वादिष्ट और खनिजों से भरपूर होता है. भारत मूल रूप से एक कृषि प्रधान देश है और लगभग तीन–चौथाई आबादी आजीविका के लिए कृषि, पशुधन और संबद्ध क्षेत्रों पर निर्भर करती है। देश की लगभग 70 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। इसके अलावा, देश के 88 करोड़ गरीबों में से लगभग 80 प्रतिशत ग्रामीण गरीब हैं. परंपरागत रूप से, देश सहित, कृषि और पशुधन इस तरह से जुड़े हुए हैं कि यह सामान्य से कम वर्षा/कमी वाले वर्षों के दौरान भी ग्रामीण आबादी के एक बड़े हिस्से के लिए स्थायी आजीविका सुनिश्चित करता है। पशुधन भी उनके लिए एक महत्वपूर्ण संपत्ति है। पशुधन क्षेत्र लाखों ग्रामीण लोगों को रोजगार प्रदान कर रहा है। इसलिए पशुधन क्षेत्र का तेजी से विकास न केवल स्थिर कृषि विकास को बनाए रखने के लिए बल्कि ग्रामीण गरीबी को कम करने के लिए भी सबसे वांछनीय है।

चारा उत्पादन के लिए प्रमुख बाधाएँ

भूमि का कम होना

अधिकांश भूमि जोत 2 हेक्टेयर से कम है और लगभग 30 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास भूमि नहीं है। केवल बड़े किसान (65þ) ही कोई चारा उगाते हैं, छोटे और सीमांत किसान (90þ) पशुओं को खिलाने के लिए फसल अवशेषों पर निर्भर होते हैं। खेती योग्य भूमि के लिए विभिन्न भूमि उपयोगों के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण चारा फसलों के रकबे में और वृद्धि संभव नहीं है। राज्य में हरे चारे का रकबा लगभग नगण्य है।

रबी मौसम में सिंचाई की खराब सुविधा

वर्षा आधारित कृषि देश के कुल बोए गए क्षेत्र का लगभग 51 प्रतिशत है और कुल खाद्य उत्पादन का लगभग 40 प्रतिशत है। वर्षा आधारित खेती होने के कारण रबी मौसम मे हरे चारे कि बुआई मे परेशानी होती है।

चारा फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल में कमी

बढ़ती मानव जनसंख्या ने हमें चारे की फसलों के बजाय अधिक अनाज वाली फसलें उगाने के लिए मजबूर किया। अधिकांश भूमि जोत 2 हेक्टेयर से कम है इसलिए किसान फसल उत्पादन में रुचि रखते थे।

हरे चारे की प्रतिदिन कटाई के लिए मजदुर कि कमी

हरे चारे को पशुओं को खिलाने से पहले प्रतिदिन खेत से काटकर लाना पडता है एवं खिलाने के पहले उसकी कुट्टी काटनी पडती है. यदि खेत डेयरी फार्म से बहुत दूर है तो विशेषकर बरसात के मौसम में हरे चारे की कटाई और परिवहन की एक बड़ी समस्या है।

जंगली जानवरों की समस्या एवं प्राकृतिक आपदाएँ

जंगली एवं चरने वाले जानवर हरे चारे को नुकसान पहुंचाते हैं। बुआई के समय बाढ़, सूखा, भारी बारिश और ठंड जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण हरे चारे की क्षति हुई और अंकुरण कम हुआ। इसलिये कहा जाता है कि हरा चारा के लिये उपयुक्त जमीन को फार्म के नजदीक, ऊपजाऊ, सिचाई की व्यवस्था होनी चाहिये।

सालो भर हारा चारा उपलब्ध करने का प्रबंधन

क्र. सं.	फसल	क्षेत्रफल (हे.)	बुआई का समय	चारे की उपलब्धता	चारा उत्पादन (क्विं.)
1.	मकई/ बहुकटाई ज्वार लोबिया/ ग्वार	0.50	फरवरी –मार्च	अप्रैल–जुलाई	500
	बहुकटाई ज्वार /शंकर नेपियर /पैराघास़ लोबिया / ग्वार	0.50	जून–जुलाई	अगस्त–नवंबर	500
	बरसीम. जई (बहुकटाई) (रबी)	0.50	अक्तूबर–नवंबर	दिसंबर–अप्रैल	600
2.	मकई. लोबिया / ग्वार	0.25	मार्च–अप्रैल	मई–जून	150
	मकई़लोबिया /ग्वार	0.25	मई–जून	जुलाई–अगस्त	150
	बहुकटाई ज्वार. लोबिया / ग्वार	0.50	जून–जुलाई	अगस्त–नवंबर	600
	बरसीम. जई (बहुकटाई) (रबी)	0.50	अक्तूबर–नवंबर	दिसंबर–अप्रैल	600
3.	शंकर नेपियऱ लोबिया' / बरसीम (रबी)*	1.00	मार्च–अप्रैल	पूरे साल	2000

* लोबिया गर्मी मे एवं बरसीम ठंढे मे

जमीन की कमी होने के कारण हारा चारा का ज्यादा उत्पादन करना कठिन है, लेकिन एक पशु को कम से कम 5 किलो हारा चारा मिलनी चाहिए जिससे उसकी विटामिन ए की जरूरत पूरी हो

जाती है। जिसके लिए एक साल मे 18 क्विंटल हरे चारे की जरूरत पड़ेगी और 0.012 हे. जमीन की जरूरत होगी। बरसीम 4–6 क्विं./ कट्ठा उत्पादन होती है।

पशु को हरे चारे खिलाने के महत्व

- हरा चारा पशु ज्यादा चाव से खाती है। इससे पशु का पेट जल्दी भरती है जिससे से पशु को संतुष्टि होती है।
- छोटी घास एवं दलहन वर्ग के चारे मे प्रोटीन एवं मिनरल की मात्रा ज्यादा होती है।
- यह सस्ता पोषक तत्व उपलब्ध कराती है।
- यह गर्मी के दिनो मे पशु को ठंढक प्रदान करती है।
- हरा चारा खाने से पशु का पेट ठीक रहता है एवं पैखाना नहीं होने की शिकायत नहीं रहती है।
- यह पशु को भूख बनाए रखती है।
- लेकिन ज्यादा हरा चारा खिलाने से उसे ज्यादा पानी, सूखा भाग एवं पोषक तत्व की मात्रा कम मिलती है।
- यदि डेयरी फार्म को फायदेमंद बनानी है तो पशु को सलोभर हरा चारा खिलानी चाहिए। हालांकि एक समय ऐसा भी आती है कि हरा चारा उपलब्ध नहीं रहती है तो उस समय के लिए साइलेज एवं हे बनाकर रखें।
- हरा चारा खिलाने से पशु कि प्रजनन क्षमता एवं स्वास्थ्य ठीक रहती है एवं ज्यादा दिनो तक दूध देती है।
- हरा चारा खिलाने से पशु का बच्चा भी स्वास्थ्य रहता है।
- 10 लीटर तक दूध देने वाली गाय का प्रबंधन केवल हरा चारा खिलाकर कि जा सकती है। साथ ही साथ खिलाने कि खर्च को 20% तक कम किया जा सकता है।

हरे चारे के गुण

1. हरा चारा कि कटाई समय पर कि जाय तो यह ज्यादा स्वादिष्ट, सुपाच्य, ज्यादा रस वाली होती है।.
2. प्रोटीन कि मात्रा कम से कम 3.0 % पूराने चारे मे एवं 30 % नए घास जिसमे ज्यादा उर्वरक का उपयोग किया गया हो।
3. घास के प्रोटीन मे आर्जिनिन,ग्लूटामिक एसिड एवं लाइसिन की मात्रा अधिक होती है।
4. हरे चारे मे तेल की मात्रा 4.0% से अधिक होती है।
5. चारे मे मिनरल की मात्रा मिट्टी के प्रकार, फसल के प्रकार, शस्य प्रणाली पर निर्भर करती है।
6. यह विटामिन ए का अच्छा स्रोत है। इसकी मात्रा 250 मिलीग्राम / किलोग्राम सूखे भाग तक होती है। यह विटामिन स्वास्थ्य, वृद्धि,उत्पादन एवं प्रजनन के लिए बहुत आवश्यक

होती है।

7. दुधारू पशु को 5 किलोग्राम हरा चारा प्रतिदिन खिलाने से विटामिन ए की जरूरत पूरी हो जाती है।
8. हरे चारे मे एक जूस पाया जाता है इसे "ग्रास जूस" से जाना जाता है। यह पशु के वृद्धि, दूध उत्पादन मे वधोतरी करती है।
9. हरा चारा खिलाने से दूध उत्पादन मे खर्च कम हो जाती है।
10. हरे चारे मे पोषक तत्व की मात्रा उसी चारे के सूखे रूप से ज्यादा होती है।
11. हरे चारे को सूखे चारे के साथ खिलाने से सूखे चारे की पाचन क्षमता बढ़ जाती है।

खरीफ मौसम के हरे चारे

ज्वार (सुडान)

ज्वार–अनंत

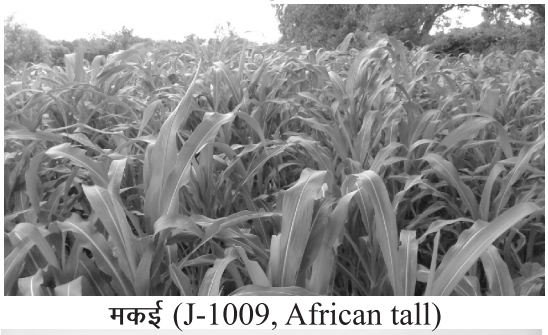

मकई (J-1009, African tall)

लोबिया (EC/4216)

ग्वार (BG-1)

राईसबिन (बिधान-2)

हरा चारा (रबी)

जई (केंट)

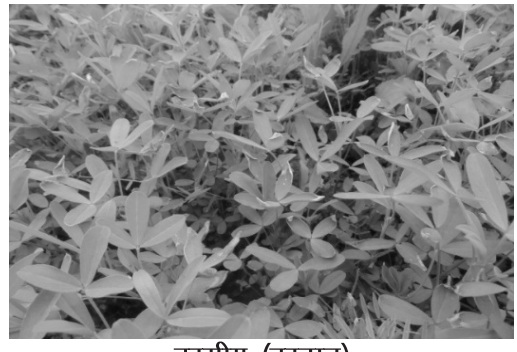

बरसीम (वरदान)

बहुवार्षिक हरा चारा

नेपिअर घास

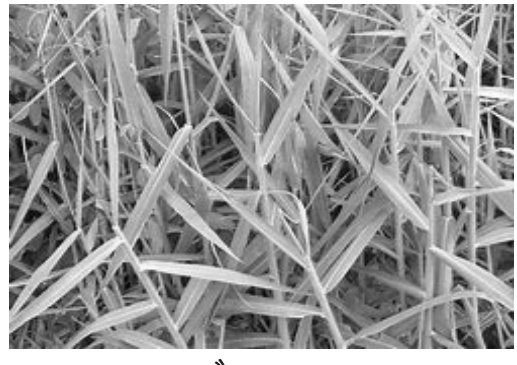

पैरा घास

कलैटोरिया

अजोला

चारा उत्पादन बढ़ाने के उपाय

बागवानी के साथ हरा चारा

बागवानी के साथ हरा चारा प्रणाली में फलों के पेड़ों और घासों को एक साथ उगाना शामिल है। फलों के पेड़ों को विकसित होने में आमतौर पर लगभग 4–5 साल लगते हैं और इसलिए

शुरुआती वर्षों में चारा अंतरफसलों की खेती की अनुमति मिलती है। फलों के पेड़ पहली श्रेणी के होते हैं जबकि घासें ज़मीनी फसल के रूप में उगाई जाती हैं। बारहमासी चारा घास और फलियां जैसे स्टाइलोसैंथेस हामाटा, स्टाइलोसैंथेस स्कैबरा, सेंच्रस सिलियारिस, सी. सेटिगरस, आदि और वार्षिक चारा फसलें जैसे लोबिया, ज्वार, जई, मक्का आदि बागवानी के साथ हरा चारा प्रणाली के लिए आदर्श फसलें हैं।

आम के बाग में ज्वार हरा चारा

आम के बाग में जई का हरा चारा

राईसबीन एवं ज्वार

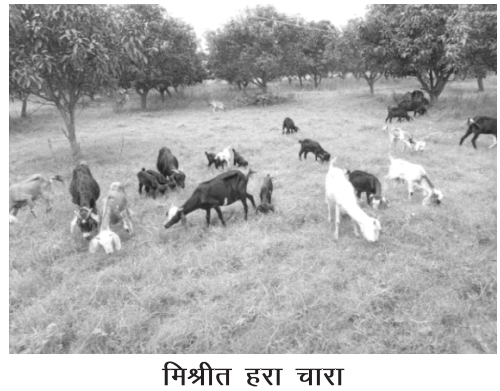

मिश्रीत हरा चारा

फलों की फसलों के लिए मल्च के रूप में कार्य करता हैः विशेष रूप से दलहन वर्ग के हरे चारे, जिसे उगाने के लिए कम पानी की आवश्यकता होती है। राईस बीन दूसरी कटाई के बाद जब फल लगने के लिए छोड़ दिया जाता है तो इसके बीज गिर जाते हैं और अक्टूबर के बाद बगीचे में उग आते हैं।

पारंपरिक फसल के साथ सहफसली खेती

वर्षा आधारित स्थिति में बहुत कम क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा होती है, इसलिए आलू जैसी लंबी अवधि की खाद्य फसलों में कम अवधि के चारे की अंतर–फसलें उगाई जाती हैं, जो व्यापक दूरी पर होती हैं और योजक श्रृंखला में निष्क्रिय–पंक्ति स्थान में फलियां और अनाज के चारे को समायोजित करने के लिए अच्छी गुंजाइश प्रदान करती हैं। बांका जिले में आलू के साथ जई के

हरे चारे की सहफसली खेती आम बात है। आलू के खेत में लगभग 40þ क्षेत्र (एवी. 17424 वर्गफुट/एकड़) खाली है जिसका उपयोग चारा उत्पादन के लिए किया जाता था।

आलू के साथ जई के हरे चारे की सहफसली खेती

तालाब के मेड़ पर चारे की खेतीः

एक एकड़ तालाब की परिधि 1163 फीट है जिसपर हाइब्रिड नेपियर का रोपण 5 फीट की दूरी पर 233 स्लिप/एकड़ की दर से किया गया है। हाइब्रिड नेपियर की उपज 102 क्विंटल प्रति वर्ष और राईस बीन के साथ हाइब्रिड नेपियर की रोपण करने पर उपज बढ़कर 139 क्विंटल प्रति वर्ष हो गई। गांवों में जल नहर, जल चैनल सह जल निकासी प्रणाली, सिंचाई चैनल और डेयरी फार्म के आसपास की बंजर भूमि का उपयोग चारा उत्पादन के लिए किया जाता है।

तालाब के किनारे पर हाइब्रिड नेपियर

7 गैर परम्परागत हरे चारे का प्रसंस्करण

धर्मेन्द्र कुमार

पशु पोषण विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय,

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना, बिहार–800014

चारा संरक्षण की उपयोगिताः

दुधारू पशुओं से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए उनके आहार में पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक और हरा चारा आवश्यक है। वर्ष के कुछ महीनों में जलवायु के उपयुक्त होने के कारण हरे चारे तथा घासों का अधिक उत्पादन होता है। लेकिन नवम्बर–दिसम्बर तथा अप्रैल–जून के माह में हरे चारे की अत्यधिक कमी रहती है। अतः अतिरिक्त हरे चारे को उन दिनों के लिए संरक्षित कर लिया जा, जब इनकी आपूर्ति न्यूनतम होती है। इससे चारे की गुणवत्ता भी बनी रहती है। जिस प्रकार हम अपने सब्जियों और फलों को वर्ष भर सुरक्षित रखने के लिए उनका स्वादिष्ट चटपटा आचार बना लेते है उसी प्रकार पशुओ के लिए हरे चारे को सुरक्षित रखने के लिए हरे चारे का एक प्रकार का आचार या साइलेज बना लेते है।

साइलेजः

हरा चारा जिसमें नमी की पर्याप्त मात्रा होती है, हवा की अनुपस्थिति में जब किसी गड्ढे में दबाया जाता है तो कि.डवन की क्रिया से वह चारा कुछ समय बाद एक अचार की तरह बन जाता है जिसे साइलेज कहते है। हरे चारे की कमी होने पर साइलेज का प्रयोग पशुओं को खिलाने के लिए किया जाता है। हवा की अनुपस्थिति में बढ़ने वाले जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है जो चारे में उपस्थित कार्बोहाइड्रट को लैक्टिक अम्ल (जो दही में भी पाया जाता है) में बदल देते है। लगभग डेढ़ महीने के अंदर यह चारा साइलेज में बदल जाता है, जो पशु बड़े चाव से खाकर पुष्ट होते है।

साइलेज बनाने योग्य फसलें:

जिस फसल में घुलनशील कार्बोहाइड्रेट एवं पानी प्रचुर मात्रा में होती है उसका साइलेज बनाया जाता है। साधारणतः अनाज वर्ग के चारे की फसलें जैसे ज्वार, मक्का, बाजरा, मकचरी, तथा घांसे जैसी गिनी, सूडान और नेपियर आदि फसलें जिनमें कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होती है साइलेज बनाया जाता है इसमें मक्का एवं ज्वार सबसे उपयुक्त फसल है।

साइलेज बनाने की विधिः

साइलेज जिन गड्ढों में बनाया जाता है उन्हें साइलोपिट्स कहते हैं। साइलो विभिन्न प्रकार के होते हैं जैसे बंकर साइलो, गड्ढा साइलों, नाली साइलो, टावर साइलो आदि परन्तु आमतौर पर किसान गड्ढा–साइलो का ही प्रयोग करते हैं। यह साइलो जमीन में एक गोल या समको.ा चतुर्भुज के आकार का गड्ढ़ा खोदकर बनाया जाता है। गोल गड्ढा अधिक अच्छाा माना जाता है क्योंकि इसमें चारे का दबाना और हवा का बाहर निकलना, जो कि अच्छे गुणों

वाली साइलेज के लि, नितान्त आवश्यक है। 8 फीट व्यास और 12 फीट गहराई वाले गोल गड्ढे में जो कि एक छोटे किसान की आवश्यकता के लिए काफी होता है, साढे पॉच टन (55 क्विंटल) हरा चारा सुरक्षित रखा जा सकता है। यदि चारे की मात्रा अधिक हो तो साइलों का आकार उसी अनुपात में बढ़ाया जाता है। पिट साइलों का लाभ यही है कि ये सस्ता पड़ता है।

साइलेज के लिए ज्यादातर चारे की फसलों को फूल आने के समय ही काटना चाहिए क्योंकि इस समय इनमें पोषक तत्व अधिक मात्रा में पाए जाते है। यानि खेत में दो तिहाई फसल में फूल आ गयी हो तो इसकी कटाई सुबह की ओस सूखने के बाद चारे को काटकर दोपहर तक के लिए धूप में फैला कर छोड़ दें, जिससे कुछ नमी सूख जाय। फसल में लगभग 35–40 प्रतिशत सूखा भाग एवं 60–65 प्रतिशत नमी साइलेज बनाने के लिए उपयुक्त होती है। फसल को 3–4 घंटे सूर्य की रोशनी मे सूखा देने पर फसल साइलेज बनाने के लिए उपयुक्त हो जाती है।

साइलेज बनाने के लिए पिट को भरना

1. चारे को फूल आने की अवस्था में सुबह के समय काट कर दोपहर तक खेत में छोड़ देते है, जिससे उसकी नमी 60–65 प्रतिशत हो जाय।
2. फसल को अच्छी तरह 2 से 5 सेन्टीमीटर के टुकड़ों में कुट्टी कर देना चाहिए, ताकि ज्यादा से ज्यादा चारा साइलों पिट में दबाकर भरा जा सके, जिससे गड्ढ़ा भरने के बाद कम हवा रहने की संभावना होती है।
3. गडढ़े में एक फुट तक चारा भरने के बाद ट्रैक्टर या मजदूरों की मदद से ठीक प्रकार से दबाना चहिए ताकि उसके अंदर हवा बिल्कुल न रहे।
4. साइलेज बनाते समय 1 किलोग्राम गुड़ एवं 1 किलोग्राम नमक प्रति क्विंटल चारे की दर से भराई के साथ पतली परतों में चारे के ऊपर डालते जाना चाहिए। ऐसा करने से बहुत अच्छी गुणवत्ता का साइलेज तैयार होगा।
5. गडढ़े को भूमि की सतह से 1 या 1.25 मीटर ऊपर तक भरना चाहिए क्योंकि किण्वन के बाद चारे का स्तर दब कर नीचे आएगा।
6. प्रतिदिन चारा भरने और दबाने के बाद उसके ऊपर पोलीथीन की चादर से ढ़क देना चाहिए ताकि चारा न सूखे, न भीगे।
7. अंतिम मे इसके ऊपर पोलीथीन की शीट बिछाकर ऊपर से 18–20 से-मी- मोटी मिट्टी की पर्त बिछा दी जाती है। इस परत को गोबर व चिकनी मिट्टी से लीप दिया जाता है। दरारें पड जाने पर उन्हें मिट्टी से बन्द करते रहना चाहि, ताकि हवा व पानी गड्ढे में प्रवेश न कर सकें।
8. इस प्रकार 45 दिन में साइलेज तैयार हो जाएगा।
9. गड्ढ़े की भराई वारिश के समय में नहीं करनी चाहिए। इस समय नमी की मात्रा बढ़ जाती है।

गैर परम्परागत हरे चारे का प्रसंस्करण

थैले में साइलेज बनाना

अभी तक लोग पिट बनाकर साइलेज बनाते थे जिसमे 40 हजार का खर्च आती थी. एवं इसमे 8 टन हरा चारा एक बार में जरुरत पड़ती थी. चूहा काट देने पर एवं खिलाने समय खोलने पर 10 दिनों में खराब हो जाती थी, जिससे पशुपालक को बहुत क्षति होती थी. इसके लिए पशुपालक दाना का बोरा या खाद के बोरी में अपने प्रतिदिन बचे हुए चारे का साइलेज बनाकर संगृहीत कर सकते हैं. 1 बोरी में 30–35 किलो साइलेज बनती है जो दो दिन में पशुं को खिला सकते हैं एवं खराब होने की संभावना भी नहीं हैं. इसके लिए एक प्लास्टिक कि थैली लेकर पहले बोरी के अन्दर डाल दें फिर उसमे कुट्टी कटा हुआ हरा चारा के साथ 1 ग्राम प्रोबायोटिक 1 टन हरा चारा में मिला दें।

साइलेज खिलानाः

अच्छी प्रकार से भरे हुऐ साइलों में साइलेज लगभग दो से तीन माह में खिलाने के लिए तैयार हो जाता है। खिलाने के लि, साइलों का एक भाग खोलते हैं तथा नीचे से उपर तक का पूरा टुकड़ा एक साथ निकालते हैं राशन में 10 से 15 कि0ग्रा0 साइलेज प्रति पशु खिलाया जा सकता है। शुरू में खटास के कारण कुछ पशु साइलेज नहीं खाते है। साइलेज के लिए अभ्यस्त होने में पशओं को कुछ दिन लगते हैं, इसलिए यदि वे आरम्भ में एक दो दिन तक इसको न भी खाये तो

निराश नहीं होना चाहिए। यदि साइलेज पशुओं के रहने वाले स्थान पर ही खिलाया जाता है तो इसे दोहन के बाद खिलाना चाहि, ताकि दूध में साइलेज की गन्ध न जा सके।

साइलेज बनाने में सावधानियाँः

1. साईलों को भरते समद्र कटे चारे की पूरे क्षेत्रफल में पतली–पतली एक समान परतों में फैलाकर व दबा–दबा कर अच्छी तरह से भरना चाहिए ताकि अधिकांश हवा बाहर निकल जाये।
2. साइलों में चारा भरने में समय कम से कम लगाना चाहिए। साइलो का कम से कम 1/6 भाग प्रतिदिन भर जाना चाहिए, जिससे कि साललों अधिक से अधिक 6 दिन में पूरा भर जाए।
3. साइलों को काफी उँचाई तक भरना चाहि, जिससे कि बैठाव के बाद भी चारे का तल दीवारों से काफी उँचा रहे। ऐसा करना इसलिए जरूरी होता है, क्योंकि किण्वन की क्रिया से चारे में अधिक सिकुड़न होती है।
4. साइलों के अन्दर हवा व पानी नहीं जाना चाहिए। पोलीथीन की चादर से चारों तरफ से ढककर उसके उपर 30 से.मी. मोटी मिट्टी की पर्त डालना चाहिए।

8 डेयरी पशुओं के प्रमुख रोग , उपचार और बचाव

मृत्युंजय कुमार, विवेक कुमार सिंह, पल्लव शेखर,
अरविन्द कुमार दास एवं ज्ञानदेव सिंह

पशु औषधि विभाग/वेटरनरी क्लिनिकल काम्प्लेक्स, बिहार पशुचिकित्सा महाविद्यालय , पटना –14

डेयरी पशुओ में अनेक प्रकार की बीमारियाँ पायी जाती है जो संक्रामक और असंक्रामक प्रकृति का होता है । संक्रामक रोग विषाणु, जीवाणु, कबक, वाह्य–परजीवी, अन्तः–परजीवी, प्रोटोजोआ आदि के द्वारा होता है जबकि असंक्रामक रोग पशुओं के शारीर में कुछ कमी के कारण या शारीर के अन्दर में कोई विकृति आने के कारण होता है ।संक्रामक रोग एक पशु से दुसरे पशु मे फैलता है जबकि असंक्रामक रोग बीमार पशु से स्वस्थ पशु में नहीं फैलता है । संक्रामक रोग विभिन्न प्रकार के वाहक जैसे मच्छर, किलनी, मक्खी, घोंघा आदि के द्वारा बीमार पशु से स्वस्थ पशु में फैलता है ।पशुओं को संतुलित आहार, टिकाकरण, कृमिनाशक औषधि, बीमारी के वाहक का नियंत्रण और गौशाला प्रबंधन के द्वारा इन बीमारयो को काफी कम किया जा सकता है जिससे पशुओं की उत्पदाता में वृद्धि की जा सकती है।

1. मुहपका–खुरपका रोग .: यह बीमारी फ. म. डी. विषाणु के द्वारा फटे पैरो वाले मवेशियों जैसे गाय, भैंस, बकरी,भैड़, सूअर आदि में होता है और हवा के माध्यम से दो सौ किलो मीटर तक फैल सकता है। यह बीमारी पशु के मॉल–मूत्र, लार आदि से पशुओ के बीच फैलता है । इस बीमारी में तेज ज्वर के साथ–साथ मुह से लार का आना, जिव में छाले का आना, खाने में कमी या खाना बिल्कुल नहीं खाना, जुगाली नहीं करना,लंगराना, दूध में कमी, गर्भवती पशुओ में गर्भपात होना आदि पाया जाता है । बाहार से स्वस्थ दिखने वाले बच्छरो का अचानक दिल के दौरे से मृत हो जाना पाया जाता है । फ. म. डी. का उपचार बीमार पशु को अलग कर उसमें उपस्थित लक्षण के आधार पर किया जाता है । इसके रोकथाम के लिए बीमार पशुओ को स्वस्थ पशुओ से अलग रखना चाहिए तथा बीमार पशुओ की देख–रेख करने वाले व्यक्ति को स्वस्थ पशु से अलग रहना चाहिए । गौशाला में आने या जाने वाले व्यक्ति के लिए पशु के दरवाजे पर लाल पोटाश का घोल या चुना पाउडर रखना चाहिए तथा पशुशाला में आने या जाने वाले व्यक्ति को उसमे पैर डालकर आना या जाना चाहिए । इस बीमारी के रोकथाम के लिए टिका उपलब्ध है जिसका पहला खुराक चार महीने के उम्र में, दुसरा खुराक पहले खुराक के एक महीने बाद और उसके बाद प्रत्येक छः माह पर देना चाहिए । इसका टिका सामान्यतः नवम्बर– दिसम्बर एवं मई–जून में दिया जाता है ।

2. इपिमेरल ज्वर या अल्पकालीन ज्वर या अढ़ैया बुखारः यह गाय एवं भैसों में होने वाली एफिमेरल विषाणु जनित रोग है जो मच्छर और कुलिकोइड के द्वारा फैलता है । इस बीमारी में पशु

को तेज ज्वर के साथ लंगरापन की समस्या आती है और ज्यादातर पशु ३ दिनों में बिना इलाज के भी ठीक हो जाता है ।इसका इलाज लक्षण के आधार पर तथा रोकथाम इसके वाहक मच्छर और कुलिकोइड को नियंत्रित केर के किया जाता है ।

3. गलघोटू या एच.एस : यह बीमारी दुधारू पशुओ जैसे गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि में प्रमुखता से देखा जाता है । यह बीमारी एच एस जीवाणु के द्वारा होता है जो किसी भी प्रकार के तनाव के कारण पशुओ में होता है क्योकि ये जीवाणु सामान्यतः स्वस्थ पशुओ में मौजूद रहता है तथा पशुओ में किसी कारण से तनाव होने से इनकी संख्या बढ़ जाती है और पशु को बीमार कर देती है । गलघोटू में मुख्यतः तेज बुखार, गले और गर्दन में सूजन, साँस लेने में कठिनाई खोलकर तथा जिव वाहर निकालकर साँस लेना, नाक से झागदार स्राव, मुह से लार गिरना, भूख में कमी और कमजोरी जैसे लक्षण पाए जाते है । कुछ पशु को कब्जियत और उसके बाद पतला दस्त भी होने लगता है। इस बीमारी में ज्यादातर पशु की मृत्यु छः से चौबीस घंटे के भीतर हो जाता है। इसके रोकथम के लिए टिका उपलब्ध है जो बरसात शुरू होने से पहले मई या जून महीने में दिया जाता है, यह टिका छः महीने या उससे ज्यादा उम्र वाले दुधारू पशुओ में दिया जाता है और किसान भाइयो को हर साल इस बीमारी का टिका अपने पशुओ को लगाना चाहिए।

4. जहरवाद या ब्लैक क्वार्टर (बी.क्यू) : यह बीमारी दुधारू पशुओ जैसे गाय, भैंस, बकरी,भेर आदि में प्रमुखता से बरसात के मौसम में देखा जाता है । यह बीमारी ज्यादातर छे महीने से डेड साल के पशुओ में प्रमुखता से होता है । इस बीमारी में पशु को तेज बुखार, दर्द के साथ–साथ पैर में लंगरापन आ जाता है । पशु के पुट्ठा में सुजन आ जाता है और किसी–किसी पशु के आगे के पैर में सुजन आता है जो बाद में पुरे शारीर में फैल जाता है । फुले हुए भाग को दवाने से कुरकुराहट की आवाज आती है और बाद में सड़ने की दुर्गन्ध आती है । सही समय पर ईलाज नहीं होने से पशु की मृत्यु हो जाती है । जहरवाद के रोकथाम के लिए टिका उपलब्ध है जो बरसात शुरू होने से पहले मई या जून महीने में दिया जाता है, यह टिका छे महीने या उससे ज्यादा उम्र वाले दुधारू पशुओ में दिया जाता है और किसान भाइयो को हर साल इस बीमारी का टिका अपने पशुओ को लगाना चाहिए।

चित्र . थन और थन में सूजन

5. थनैला रोग: वारिष के मौसम में थनैला रोग की समस्या दुधारू पशुओ में काफी बढ़ जाती है । यह बीमारी थन में बाहर की गन्दगी के कारण विभिन्न प्रकार के जीवाणु, विषाणु या कवक का थान के

अन्दर जाने के कारण होता है । इस रोग के सुरु के अबस्था में पशु के थन में सुजन, दर्द और गर्मी आ जाता और यह सुजन एक थान में या एक से ज्यादा थान में हो सकता है थनैला में थान से फटा–फटा या पानी या पीव के सामान या खून मिलकर निकलता है । इस बीमारी के अति–उग्र रूप में पशु की मृत्यु चौविश यस अर्तालिश घंटे के अन्दर हो जाती है । जब बीमारी पुरे शारीर में फैल जाती है तो पशु को ज्वर, खाना नहीं यस कम खाने की समस्या, थन के सामने के भाग में शोफ का आना आदि देखा जाता है । थनैला रोग के रोकथाम के लिए पशु के थन को सुखा एवं स्वच्छ रखना चाहिए ।

6. गाँठदार त्वचा रोग या एल एस डी : यह दुधारू पशुओ खासकर गाय और भैस में किलनी, मच्छर आदि के द्वरा फैलाया जाता है । यह बीमारी एल एस डी विषाणु के द्वारा होता है तथा इस रोग में सारे शारीर पर छोटे से बारे–बारे गाठे पाई जाती है । गाँठदार त्वचा रोग में पशु को ज्वर, खाना कम खाना या नहीं खाना, पुरे शारीर में गाँठओ का बनना, कब्ज सामान्यतः होता है । इस बीमारी के बाद वाले अवस्था में पैर में सुजन, ग्रन्थियो (सुपर स्कापुलर) का बहुत बार होना, आगे के दोनों पैरो के बिच में सुजन, गले में सुजन होता है । ये सुजन शारीर के विभिन भाग में पानी जमा होने के कारण होता है । एल एस डी का ईलाज लक्षण के आधर पर किया जाता है । इस बीमारी के रोकथाम के लिए लम्पी प्रो वेक नाम का टिका हमारे देस उपलब्ध है जो की प्रतिबर्ष दिया जाता है।

7. थिलेरिओसिस : यह पशुओ में किलनी द्वारा फैलनेवाला प्रोटोजोवल बीमारी है जिसमे पशुओ को तेज ज्वर, भूख की कमी, अगले पैर के ग्रंथि का बहुत बरा हो जाना, खून की कमी,सास लेने में कठिनाई, दस्त, वजन का कम होना आदि होता है । इस बीमारी का सही समय पर जाँच कर उपचार करने से पशु ठीक हो जाता है । इस बीमारी के लिए टिका भी उपलब्ध है जो तीन साल के लिए सुरक्षा देता है । थिलेरिओसिस को फैलने से रोकने के लिए किलनी का बरा होना एवं सुजना उपचार बाजार में उपलब्ध फ्लुपोर, फ्लुमितास, बेटिकोल, इवेर्मेक्टिन आदि अकारिसीडल औषधि का उपयोग करना चाहिए ।

8. येनाप्लास्मोसिसः : यह दुधारू पशुओ में किलनी द्वारा फैलनेवाला रिकेत्सिसअल बीमारी है जिसमे पशुओ को तेज ज्वर, भूख की कम, खून की कमी,सास लेने में कठिनाई, पिला दस्त, वजन का कम होना आदि होता है ।यह बीमारी येनाप्लास्मा नामक रिकेत्सिया से होता है । इस बीमारी को फैलने से रोकने के लिए किलनी का उपचार बाजार में उपलब्ध फ्लुपोर, फ्लुमितास, बेटिकोल, इवेर्मेक्टिन आदि अकारिसिद्दल औषधि का उपयोग करना चाहिए ।

9. बाबेसीओसिस या लाल पेशाव रोग या टिक ज्वरः यह दुधारू पशुओ में किलनी द्वारा फैलनेवाला प्रोटोजोवल बीमारी है जो बबेसिया नामक प्रोटोजोआ से होता है । इस बीमारी में

पशुओ को तेज ज्वर, भूख की कम, खून की कमी,कॉफी के रंग का पेशाव, वजन में कमी आदि होता है । बरसात के मौसम में किलनी की संख्या में वृद्धि के कारण इस रोग के होने की सम्भावना काफी अधिक हो जाती है।

बेसीओसिस में कॉफी रंग का मूत्र

10. ट्रिपेनोसोमिएसिस या सर्रा रोगः यह दुधारू पशुओ में प्रोटोजोवल बीरी है जो ट्रिपेनोसोमा के कारण होता है तथा स्टमाक्सिस या टबेनस नमक मक्खी के द्वारा फैलता है ।इस बीमारी में पशुओं के ज्वर में उतार–चढ़ाव, गोल गोल घूमना, पैर पटकना, भूख की कमी, खून की कमी, शरीर के निचले भाग में शोफ, भूख की कमी, थकान, शरीर में झटका आदि होता है ।इस बीमारी के रोकथाम के लिए मक्खियों का रोकथाम जरुरी है ।

11. अन्तः परजीवियों का संक्रमणः दुधारू पशुओ में अनेक प्रकार के अन्तः दृपरजीवी पाया जाता है । वर्षा ऋतू में पशुओ के गोशाला के आस–पास पानी के जमाव से घोंघा की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है । घोंघा दुधारू पशुओ में होने वाले अनेक अन्तः परजीवियो का वाहक होता है और पशुओ में विभिन्न प्रकार के अन्तः परजीवी (लीवर फ्लूक,अम्फिस्तोमिअसिस, सिस्टोसोमिअसिस आदि) रोगों का कारण होता है । अन्तः परजीवी का प्रमुख लक्षण भूख में कमी, दस्त का आना, गोवर में लझा का आना, गोवर में खून का आना, खून की कमी, गला के निचे सोफ का आना, दोनों पैरो के बिच में सोफ का आना आदि सामिल है ।

इस रोग में पशुओ के लीवर खराब हो जाता है तथा अत्यधिक दस्त की स्थिति में पशु की मृत्यु तक हो जाती है । नेसल सिस्टोसोमिअसिस या घोंघा रोग में नाक के अन्दर गाठ जैसा बन जाता है और उसमे से पानी के साथ खुन मिलकर नाक से निकलने लगता है । पशु के नाक से बहुत तेज आवाज (सनोरिंग) आता है जिसे बहुत दूर से ही सुना जा सकता है । इस बीमारी के रोकथाम के लिए पशुओ को पानी वाले जगह में चरने के लिए नहीं छोड़ना चाहिए तथा पशुशाला के आस–पास भी पानी को जमा नहीं होने देना चाहिए । पशुओ का गोवर नजदीकी पशु चिकित्शालय में कम से कम छः महीने में एक बार जरुर जांच करनी चाहिए और पशु को प्रत्येक चार से छः महीने के अंतराल पर क्रिमिनाशक औषधि देनी चाहिए । लीवर फ्लूक, अम्फिस्तोमिअसिस, सिस्टोसोमिअसिस आदि होने की स्थिति में ओक्सीक्लोजानाइड या ट्राईक्लोबेनडाजोले नामक औषधि का उपयोग किया जा सकता है । पशुओ में कृमी होने की स्थिति में कृमिनाशक औषधि का दो खुराक पंद्रह या इक्कीस दिनों के अन्तराल पर देना चाहिए ।पशुओं में होने वाली फीता–कृमि (एचिनोकोकोसिस) पशु के शारीर में पहुत बरा–बरा सिस्ट

बना देता है जिसमे अनेको लीटर पानी जैसा तरल पदार्थ भरा रहता है ।इसके अलावे पशु में दस्त, खाना की कमी, वजन में कमी आदि समस्या को पैदा करता है ।फीता–कृमि के रोकथाम के लिए प्राजीकुईनटल नमक औषधि का उपयोग होता है ।गोल– कृमि (अस्कारिस, बुनोस्टोमम, त्रिचुरिस आदि) के संक्रमन की अवस्था में पशु में पातला दस्त, खाना की कमी , निर्जलीकरण, वजन में कमी आदि की समस्या पाई जाती है। इसके उपचार के लिए अल्बेन्दाजोले, फेंबेंडाजोल, इवेर्मेक्टिन आदि औषधियों का उपयोग किया जा सकता है।

वाह्य–परजीवी का संक्रमणः वाह्य– परजीवी जैसे किलनी, जूँ, मक्खी, मच्छर आदि पशुओं के शारीर के ऊपर रहते है और उनसे अपना भोजन प्राप्त करते है । किलनी और जूँ पशुओं के शारीर पर रहकर उनसे खून चुश्ता है और पशुओं में खून की कमी एवं पशु के चमरी को खराब करता है । ये वाह्य– परजीवी बीमार पशुओं से स्वस्थ पशुओं में अनेक प्रकार के बीमारयों जैसे लम्पी स्किन डिजीज, थेइलेरिओसिस, बबेसिओसिस, अनाप्लास्मोसिस आदि बीमारियों को फैलाने में वाहक का कम करता है । इन वाह्य दृपरिजिवी का उपचार बाजार में उपलब्ध फ्लुपोर, फ्लुमितास, बेटिकोल, इवेर्मेक्टिन आदि अकारिसीडल औषधि का उपयोग कर किया जा सकता है।

9 डेयरी पशुओं का स्वास्थ्य प्रबंधन (प्राथमिक चिकित्सा, कृमिनाशक एवं टीकाकरण)

विवेक कुमार सिंह, पल्लव शेखर ,मृतुन्जय कुमार, ज्ञान देव सिंह एवं सुमित सिंघल

बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना

परिचयः

फार्म जानवरों के लिए प्राथमिक चिकित्सा का मतलब है जानवरों में चोट या किसी अन्य अचानक बीमारी का तुरंत इलाज। प्राथमिक चिकित्सा का उद्देश्य जानवरों की जान बचाना और उनके दर्द और पीड़ा को कम करना है। समय पर दी गई प्राथमिक चिकित्सा स्थिति को और बिगड़ने से रोकती है और बीमार जानवर की रिकवरी को बढ़ावा देती है। प्राथमिक चिकित्सा उन स्थितियों में की जाती है जो जीवन के लिए खतरा पैदा कर सकती हैं और जिनके लिए मालिक या पशु स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं द्वारा तुरंत कार्रवाई की आवश्यकता होती है। संक्रामक और गैर–संक्रामक बीमारियों, किसी भी प्रकार की चोट, बिजली का झटका और जलने आदि के मामलों में प्राथमिक चिकित्सा प्रदान की जाती है। दुधारू पशुओं को स्वस्थ एवं उत्पादक बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि, उनको कृमि मुक्त रखा जाय। कृमि के प्रकोप से पशुओं में विभिन्न प्रकार कि हानि होती है। कृमियों का संक्रमण पशुओं में पोषक तत्वों कि कमी, भूख कि कमी, दस्त तथा उत्पादन में कमी आदि का कारण है। अतः कृमि पशु के स्वास्थ्य तथा उत्पादकता दोनों पर ही ऋणात्मक प्रभाव डालते हैं। कृमियों के अतिरिक्त पशुओं कि कुछ जीवाणुजनित तथा विषाणुजनित संक्रामक बीमारियां भी हैं जो पशुधन को अत्यधिक क्षति पहुंचाती है। ऐसी बिमारियों से बचाव के लिए पशुओं में टीकाकरण कि आवश्यकता होती है। अतः टीकाकरण तथा कृमि उपचार पशुधन प्रबंधन के पमुख आयाम है।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में हम पशुओं में प्राथमिक चिकित्सा, कृमि उपचार तथा टीकाकरण के बारे में जानेंगे।

पशुधन प्राथमिक चिकित्सा के लिए आवश्यक सामग्री :

सबसे पहले, यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि प्राथमिक चिकित्सा सामग्री को ढूंढना और ले जाना आसान हो। प्राथमिक चिकित्सा सामग्री को साफ और सूखा रखा जाना चाहिए।

1. कैंची
2. टॉर्च
3. हल्टर और रस्सी
4. वायर कटर
5. डिस्पोजेबल दस्ताने
6. 4 4 गॉज स्पंज

7. त्वचा क्लेंजर
8. कई छोटी बोतलें स्टेराइल सलाइन
9. पानी में घुलनशील मरहम
10. एंटी–ब्लोट मेडिसिन
11. ट्रोकार और कैन्युला
12. चिकित्सा टेप के रोल
13. मक्खी प्रतिकारक
14. कई बड़े सीरिंज (35–60 सीसी)
15. कॉटन
16. एंटीबायोटिक ऑइंटमेंट
17. थर्मामीटर

संक्रामक बीमारियों के लिए प्राथमिक चिकित्सा :

कुछ विषाणु, जीवाणु , परजीवी और कवक संक्रामक बीमारियों के लिए जिम्मेदार होते हैं। संक्रामक बीमारियाँ एक जानवर से दूसरे जानवर या जानवर से मनुष्यों तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क द्वारा फैलती हैं।

बीमारियों के प्रसारण की रोकथाम के लिए उपाय :

पशु शाला में संक्रमित और स्वस्थ पशुओं के बीच बीमारियों के प्रसारण को रोकने के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण उपाय हैं:

1. बीमार जानवरों को अलग करना

सभी बीमार जानवरों को तुरंत अलग करें ताकि वे अन्य संवेदनशील जानवरों के संपर्क में न आ सकें।

2. पशुशाला में जानवरों की अधिक भीड़ से बचें

पशुशाला में जानवरों की अधिक भीड़ से बचें ताकि जानवर एक दूसरे से उचित दूरी पर रहें और एक दूसरे के साथ प्रत्यक्ष संपर्क में ना आयें।

3. पशुशाला एवं पशुशाला परिसर की नियमित सफाई और कीटाणुशोधन

पशुशाला एवं पशुशाला परिसर की उचित और नियमित सफाई और कीटाणुशोधन से संक्रामक बीमारियों को कम किया जा सकता है।

4. जानवरों को ले जाने के लिए उपयोग किए जाने वाले उपकरणों और वाहनों की

सफाई और धुलाई

जहाँ तक संभव हो विभिन्न प्रकार के फार्म उपकरणों को साफ और कीटाणुरहित स्थिति में रखा जाता है ताकि इनके माध्यम से बीमारी के प्रसारण की संभावना को कम किया जा सके। पशु

परिवहन के लिए प्रयुक्त वाहन संक्रमण फैलाने वाले कारक हो सकते हैं और इसलिए उन्हें नियमित रूप से कीटाणुरहित और साफ किया जाता है।

5. बीमार पशुओं के आवाश में प्रवेश पर प्रतिबंध

जहां बीमार जानवरों को अलग किया गया है, उन क्षेत्रों में सीमित संख्या में श्रमिकों को प्रवेश दिया जाता है। बीमार पशुओं के शेड में काम करने वाला स्टाफ को व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए दस्ताने, वर्दी, मास्क, जूते आदि का उपयोग करके सावधानियाँ बरतनी चाहिए । ऐसा करने से स्वस्थ पशुओं में इन संक्रामक बिमारियों को फैलने से रोका जा सकता है ।

गैर–संक्रामक स्थितियों के लिए प्राथमिक चिकित्सा उपाय

संक्रामक बीमारियों के अलावा, डेयरी पशुओं को कई गैर–संक्रामक बीमारियाँ भी प्रभावित करती हैं । कुछ गैर–संक्रामक बीमारियाँ जो डेयरी पशुओं को प्रभावित करती हैं तथा उनकी प्राथमिक चिकित्सा निम्नलिखित है ।

साधारण अपच

साधारण अपच सामान्य रुमेन के गति की विफलता है। यह गायों और बकरियों में अधिक होता है। रुमेन की गति धीमी हो जाती है लेकिन पूरी तरह से रुकती नहीं है। साधारण अपच आम तौर पर आहार की गुणवत्ता या मात्रा में अचानक बदलाव से संबंधित है। यह अत्यधिक अनाज या साइलोज खिलाने, पानी की पर्याप्त मात्रा में कमी और मौखिक एंटीमाइक्रोबियल्स के लंबे उपयोग के कारण होती है। अपच के सबसे सामान्य लक्षण हैं कि जानवर आंशिक रूप से या पूरी तरह से खाना बंद कर देता है। रुमेन सख्त हो जाता है, जिससे हल्की सूजन या बाईं ओर की फ्लैंक पर सूजन हो जाती है। अपच का इलाज संदिग्ध आहार को ठीक करने पर केंद्रित है। जब जानवरों को अच्छा चारा दिया जाता है तो स्वतः सुधार होता है। वयस्क गायों को मौखिक रूप से लगभग 20 लीटर गर्म पानी दिया जाता है जो सामान्य रुमेन कार्यों को बहाल करने में मदद करता है।

कब्ज

कब्ज को अन्य बीमारियों के लक्षण के रूप में माना जाता है न कि स्वयं बीमारी के रूप में। कब्ज वाले जानवर शौच नहीं कर पाते हैं और वे बहुत कठोर मल को मुश्किल से मलत्याग करते हैं। कब्ज का इलाज एनीमा देकर किया जा सकता है। एनीमा का मतलब है गुदा के माध्यम से मलाशय में दवा या गर्म साबुन पानी डालना । प्रभावित जानवरों को पर्याप्त मात्रा में पीने का पानी दिया जाता है।

अफरा / पेट फूलना (टिम्पेनी)

यह रुमेन और रेटिकुलम का असामान्य विस्तार है जो रुमेन में गैसों के संचय के कारण होता है। जानवर दर्द और असुविधा का अनुभव करता है और चरना बंद कर देता है। जानवर पेशाब और

शौच करते समय दबाव महसूस करता है और तेजी से या कठिनाई से सांस लेता है। प्रारंभिक या हल्के मामलों के लिए, मौखिक रूप से बाजार में उपलब्ध एंटी–ब्लोट दवाएं दी जाती हैं। मध्यम रूप से प्रभावित जानवरों में, पेट की नली (विशेष प्रकार की नली) को रुमेन गैसों को छोड़ने के लिए प्रयोग किया जा सकता है और गंभीर मामलों में, ट्रोकार और कैन्युला का उपयोग बाईं ओर की सबसे बड़ी सूजन वाले हिस्से में रुमेन में गैसों को छोड़ने के लिए किया जाता है। पेट की नली का प्रयोग करना या ट्रोकार और कैन्युला का उपयोग विशेष पशु चिकित्सा प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। सरसों का तेल (250–500 मिली) या पैराफिन तेल (100–200 मिली) परंपरागत रूप से टिमपनी से पीड़ित जानवरों को राहत देने के लिए उपयोग किया जाता है।

अवरोध

रुमेन का अवरोध रुमेन का अपचनीय रफेज के साथ सघन पैकिंग हो जाना है द्य सामान्य लक्षण 6–12 घंटे के भीतर प्रकट होना शुरू हो जाते हैं और इसमें बेचैनी, पेट में लात मारना, बार–बार लेटना और उठना और पेट के बाईं ओर ऊपरी पेट का विस्तार शामिल है। अवरोध की स्थितियों के इलाज के लिए, प्रभावित जानवर की अनाज तक पहुंच को प्रतिबंधित किया जाता है और जानवर को दिन में 3 बार आधे घंटे के लिए जोरदार व्यायाम कराया जाता है। जानवर को एक बार में सीमित मात्रा में पानी दिया जाता है। लगभग 200–400 ग्राम सोडियम बाइकार्बोनेट को 1 से 2 लीटर पानी में घोलकर मौखिक रूप से प्रभावित जानवर को दिया जाता है।

दस्त

दस्त का मतलब है कि जानवर द्वारा ढीले और पानीदार मल का बार बार निष्कासन। दस्त, प्रभावित जानवरों में निर्जलीकरण का कारण बनता है। दस्त का इलाज दस्त के कारण को ठीक करने पर केंद्रित है। यदि यह आहार से संबंधित है, तो आहार को ठीक किया जाता है। यदि यह किसी संक्रमण के कारण होता है, तो उपयुक्त दवाएं दी जाती हैं। प्रारंभ में जानवर की पाचन प्रणाली को कुछ आराम देने के लिए पहले 24 घंटों के लिए भोजन को रोककर या बहुत हल्का और आसानी से पचने वाला भोजन देकर इलाज किया जाता है। निर्जलीकरण को दूर करने के लिए प्रभावित जानवर को साफ पीने का पानी पर्याप्त मात्रा में दिया जाता है। बीमार जानवरों को मौखिक रूप से ग्लूकोज के साथ इलेक्ट्रोलाइट घोल दिया जाता है।

हीट स्ट्रोक

हीट स्ट्रोक एक आपातकालीन स्थिति है जो उच्च पर्यावरणीय तापमान और आर्द्रता में जानवर के अत्यधिक चलने के कारण होती है।

हीट स्ट्रोक के इलाज में जानवर के शरीर के तापमान को कम करना शामिल है। प्रभावित जानवर को तुरंत छायादार और अच्छी तरह हवादार क्षेत्रों में ले जाया जाता है। जानवर के शरीर पर पानी डाला जाता है और जानवर को मौखिक रूप से पर्याप्त ग्लूकोज और पानी दिया जाता है। कुछ

मामलों में स्थिति की गंभीरता के आधार पर ठंडे पानी का एनीमा भी दिया जा सकता है।

बिजली का झटका

बिजली का झटका का मतलब है जानवर के शरीर से होकर गुजरने वाले बिजली के झटके से होने वाली आकस्मिक चोटें या मृत्यु। यह बिजली गिरने, गिरे हुए विद्युत् तारों से उच्च वोल्टेज बिजली की धाराओं और बिजली के तारों को चबाने से हो सकता है।

उपचार हल्के प्रभावित जानवरों में किया जाता है और उनमें देखे गए लक्षणों के आधार पर किया जाता है। प्रभावित जानवरों को शांति वाले क्षेत्र में रखा जाता है। प्रभावित जानवरों को पर्याप्त पानी दिया जाता है। त्वचा की चोटों का इलाज एंटीबायोटिक मलहम लगा के किया जाता है।

जलने की चोटें

जलने की चोट का मतलब है आग, ज्वालाओं और गर्म ठोस पदार्थों से किसी भी प्रकार की चोट। गर्म तरल पदार्थों या भाप से होने वाली चोटों को स्कैल्ड कहा जाता है। जलने की चोट की सीमा गर्म वस्तु के तापमान और जानवर के संपर्क में आने के समय की अवधि पर निर्भर करती है।

इलाज के लिए, एंटीसेप्टिक जैसे बेटाडीन के साथ जलन का स्थानीय ड्रेसिंग किया जाता है। घाव के क्षेत्र को साफ और स्टेराइल कपड़े से ढककर संक्रमण को रोका जाता है। जानवर को पर्याप्त मात्रा में पानी और ग्लूकोज का घोल दिया जाता है।

घाव

घाव का मतलब है त्वचा या अन्य शरीर के ऊतकों में किसी भी प्रकार की चोट जैसे कट, आघात या अन्य प्रभाव। घावों का इलाज इन चोटों के परिणामस्वरूप होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम कर देता है। विभिन्न प्रकार के घावों के लिए इलाज की विधि अलग–अलग होती है।

घाव से खून बहना कैसे नियंत्रित करें?

कई प्रकार के घावों में खून बहना सबसे आम लक्षण है। रक्तस्राव की गंभीरता काटे गए रक्त वाहिकाओं की संख्या और आकार पर निर्भर करती है। गंभीर रक्तस्राव भी जानवर की मृत्यु का कारण बन सकता है। रक्तस्राव वाले घाव के मामले में, अनुशंसित विभिन्न विधियाँ हैं: बांधना, दबाव, मरोड़ और गर्मी का प्रयोग। छोटे रक्त वाहिकाओं से खून बहने को नियंत्रित करने के लिए गर्म पानी से घाव को स्नान कराना एक संतोषजनक तरीका है। बड़ी रक्त वाहिकाओं के कटे हुए सिरे को सर्जरी से बांधना भी किया जाता है। अधिकतर मामलों में रक्तस्राव को नियंत्रित करने का सबसे सुविधाजनक तरीका घाव की सतह पर दबाव डालना है। जहाँ भी संभव हो, घाव को साफ कपड़े या पट्टी से अच्छी तरह से बांधा जाता है। पट्टी लगाने से पहले, घाव को अच्छी तरह से बोरिक एसिड लगाये गए एक टुकड़े के साथ स्टेराइल एब्जॉर्बेंट कॉटन के एक टुकड़े से ढकना सलाह दी जाती है। अगर पट्टी बांधने से खून बहना बंद नहीं होता है, तो हाथ से दबाव डालना

चाहिए या घाव को एब्जॉर्बेंट कॉटन से पैक करना चाहिए ।

घायल जानवरों का प्रबंधन

किसी भी प्रकार के कणों जैसे बाल, गंदगी, बजरी, लकड़ी के टुकड़े, नाखून आदि के लिए घायल ऊतकों की सावधानीपूर्वक जांच की जाती है। घाव के किनारों के साथ बाल और फटे ऊतक जो ठीक होने में बाधा डाल सकते हैं, उन्हें ट्रिम किया जाता है। घाव के स्राव और मवाद के लिए निकासी प्रदान की जाती है। घाव के चरित्र और स्थान पर निर्भर करता है कि टांके लगाना चाहिए या नहीं। एक बुरी तरह से संक्रमित घाव को खुला छोड़ दिया जाता है जब तक कि मवाद और घाव के स्राव के लिए संतोषजनक जल निकासी स्वाभाविक रूप से न हो। मांसपेशियों और जानवरों के अन्य गतिशील भागों के पार के घावों को टांके नहीं लगाए जाते।

उपचार के बाद देखभाल में जानवर को शांत और साफ जगह पर रखना शामिल है। पैर के क्षेत्र में घाव गंदगी और घास और खरपतवार के संपर्क में आने से संक्रमित हो जाते हैं। इसलिए, यह सलाह दी जाती है कि घाव पूरी तरह से ठीक होने तक जानवर को एक साफ स्थान में रखा जाए। स्थानीय उपचार में घाव को रोजाना धोकर साफ रखना और उस पर किसी भी एंटीसेप्टिक मलहम, लोशन या पाउडर का लगाना शामिल है।

गर्भाशय का प्रसवोत्तर बाहर आना

गर्भाशय का प्रसवोत्तर बाहर आना का मतलब है वल्वा के माध्यम से गर्भाशय का बाहर निकलना। वल्वा के माध्यम से गर्भाशय का एक हिस्सा लटका हुआ पाया जाता है। लटके हुए हिस्से का जमीन या पशुशाला की दीवारों से रगड़ने से गर्भासय फट सकता है। यह आमतौर पर बछड़े के जन्म के तुरंत बाद या बछड़े के जन्म के कुछ घंटों बाद होता है। गर्भाशय का प्रसवोत्तर बाहर आना वृद्ध और कुपोषित जानवरों में व्यापक होता है। कैल्शियम की कमी वाले जानवर विशेष रूप से गर्भाशय के प्रसवोत्तर बाहर आना के प्रति संवेदनशील होते हैं। पशुपालक या पशु स्वास्थ्य कार्यकर्ता तुरंत हल्के एंटीसेप्टिक घोल से बाहर आए हुए हिस्से को धोते हैं। यदि इसमें सूजन है, तो गर्भाशय पर बर्फ लगाने से इसे कम किया जाता है। वैकल्पिक रूप से, द्रव्यमान को कम करने के लिए संतृप्त चीनी घोल भी लगाया जा सकता है। पशुपालक तुरंत बाहर आए हुए हिस्से को एक गीले तौलिये से लपेटते हैं और इसे वल्वा के स्तर तक उठाए रखने का प्रयास करते हैं। बाहर आए हुए हिस्से को सूखने नहीं दिया जाता है। बाहर आए हुए द्रव्यमान को चोटों से बचाया जाता है और उपचार के लिए तुरंत पशु चिकित्सक को बुलाया जाता है।

पशुओं में होने वाले प्रमुख कृमि संक्रमण :

कृमियों का संक्रमण दुधारू पशुओं में सामान्य बात हैं और इससे पशुओं कि सेहत प्रभावित होती है। कृमियों के संक्रमण से पशुओं कि पाचन प्रणाली पर बुरा प्रभाव पड़ता है, जिससे वो कमजोर हो जाते हैं उनकी उत्पादकता में कमी हो जाती है। पशुओं में होने वाले प्रमुख कृमि संक्रमण

निम्नलिखित हैं।

१. फैसिलिओसिस या लिवर फ्लूक
२. एमफिस्टोमिआसिस
३. एस्कारिआसिस तथा
४. काक्सीडीओसिस

पशुओं में कृमि संक्रमण के लक्षण :

पशुओं में कृमि संक्रमण के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं।

- गोबर में दुर्गन्ध आना
- गोबर में कीड़े निकलना
- पशुओं में बार बार दस्त होना
- भूख काम लगना
- दुग्ध उत्पादन में की आना
- पशु का पेट फूलना या अफरा होना
- छोटे पशुओं का विकाश रुक जाना
- पाचन में कठिनाई होना
- पशु के पेट में दर्द होना

पशुओं में कृमि उपचार :

पशुओं में कृमि उपचार पशु चिकित्सक कि सलाह से करनी चाहिए। पशु के जन्म के १४ दिन के अंतराल पर कृमिनाशक दवा देनी चाहिए। तत्पश्चात कृमिनाशक दवाओं का सतत उपयोग पशु के जीवन काल में बार बार करने से ही पशु कृमि मुक्त हो सकता है। पशुओं में कृमि नाशक दवाओं का उपयोग निम्नवत करना चाहिए।

दुधारू पशुओं में कृमि नाशक कार्यक्रम

क्रम संख्या	प्रथम खुराक कि उम्र	द्वितीय खुराक कि उम्र	बाद कि खुराक	दवा का नाम एवं डोज
१	१४ दिन	४५ दिन	४ से ६ माह के अंतराल पर	फेनबेंडाजोल (५ से ७.५ मिलीग्राम /किग्रा शरीर का भार) एल्बेंडाजोल (५ से १० मिलीग्राम / किग्रा शरीर का भार) ट्रिकलाबेंडाजोल (१० से १२ मिलीग्राम / किग्रा शरीर का भार)

दूधारू पशुओं में टीकाकरण :

पशु धन को संक्रामक रोगों से बचाव का सबसे प्रभावी उपाय टीकाकरण है। रोग हो जाने पर पशु के इलाज में काफी धन कि हानि होती है। कभी कभी पशु इलाज के बावजूद भी मर जाता है

जिससे पशुदाहन कि हानि होती है। अतः संक्रामक रोग पशुपालन के लिए सर्वथा हानिकारक साबित होते हैं। टीकाकरण पशुओं में संक्रामक रोगो को होने से रोकता है अतः टीकाकरण सफल पशु पालन के लिए अतिआवश्यक है। दुधारू पशुओं में टीकाकरण निम्नवत करना चाहिए।

दूधारू पशुओं में टीकाकरण अनुसूची

टीका का नाम	प्रथम टीकाकरण का ऊम्र	बूस्टर–टीकाकरण	पुन रू टीकाकरण
मुहपका खुरपका टीका	4 महिना या उससे ज्यादा	प्रथम टीकाकरण के1महीना बाद	प्रत्येक 6 महीने पर (अप्रैल–मई , अक्टूबर–नवम्बर)
गलाघोंटू टीका	6 महिना या उससे ज्यादा	.....	प्रत्येक वर्ष (अप्रैल–मई)
लँगड़ा रोग टीका	6 महिना या उससे ज्यादा	.....	प्रत्येक वर्ष (अप्रैल–मई)
गाठदार त्वचा रोग (एल .एस .डी)	6 महिना या उससे ज्यादा	.....	प्रत्येक वर्ष

10 दुधारू पशुओं में आवास प्रबंधन

रवि रंजन कुमार सिन्हा[1], योगेंद्र सिंह जादौन[2], रविकांत निराला[1]
एवं राकेश कुमार[3]

[1]पशुधन उत्पादन प्रबंधन विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना
[2]गव्य प्रसार शिक्षा विभाग, संजय गॉधी गव्य प्रौद्योगिकी संस्थान, पटना
[3]डेयरी सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग, संजय गॉधी गव्य प्रौद्योगिकी संस्थान, पटना

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ अधिकांश लोग अपनी आजीविका के लिए कृषि और पशुपालन पर निर्भर हैं। दुग्ध उत्पादन में देश ने महत्वपूर्ण प्रगति की है, लेकिन पशुओं की सेहत और उत्पादकता को बनाए रखने के लिए उचित आवास प्रबंधन का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है। सही आवास व्यवस्था से न केवल दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होती है, बल्कि पशुओं के स्वास्थ्य और जीवनकाल में भी सुधार होता है। आवास प्रबंधन का मतलब केवल पशुओं के रहने की जगह तक सीमित नहीं है। इसमें उनके आराम, स्वच्छता, पोषण, तापमान नियंत्रण और स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त वातावरण का ध्यान रखना भी शामिल है। इस लेख में हम दुग्ध पशुओं के आवास प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

1. दुधारू पशुओं के आवास की महत्ता

दुग्ध उत्पादन में वृद्धि के लिए पशुओं का सही देखभाल आवश्यक है, और इसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका सही आवास प्रबंधन निभाता है। जब दुग्ध पशुओं को सही वातावरण मिलता है, तो उनका शारीरिक विकास और दुग्ध उत्पादन बेहतर होता है। अगर पशुओं को सही मात्रा में आराम नहीं मिलता या वे तनाव में रहते हैं, तो इसका सीधा असर उनकी उत्पादकता पर पड़ता है। आवास का उद्देश्य पशुओं को प्रतिकूल मौसम और बाहरी पर्यावरण से बचाना है। सही ढंग से बनाए गए आवासों में पशु आरामदायक रहते हैं, जिससे उनके स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसलिए, पशुपालकों के लिए यह जरूरी है कि वे अपने पशुओं के लिए उपयुक्त आवास की व्यवस्था करें, जो उनकी जरूरतों को पूरा करे और उन्हें सुरक्षित रखे।

2. आवास के प्रकार

खुला आवास

खुले आवास प्रणाली में पशुओं को खुली जगह में रखा जाता है, जहाँ पर वे स्वतंत्र रूप से घूम सकते हैं। यह प्रणाली मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में अपनाई जाती है, जहाँ पशुओं को खुली जगह

में चरने और आराम करने के लिए पर्याप्त स्थान मिलता है। यह प्रणाली उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है, जहाँ पर जलवायु अनुकूल रहती है और अत्यधिक गर्मी या ठंड का सामना नहीं करना पड़ता।

खुले आवास में पशुओं के लिए छायादार स्थान होना चाहिए, जहाँ पर वे गर्मी से बच सकें। इसके अलावा, पर्याप्त पानी की व्यवस्था भी होनी चाहिए ताकि पशुओं को प्यास न लगे और वे स्वस्थ रहें।

बंद आवास

बंद आवास में पशुओं को शेड में रखा जाता है, जहाँ वे मौसम के प्रभाव से सुरक्षित रहते हैं। इस प्रकार का आवास उन क्षेत्रों में अधिक उपयोगी होता है, जहाँ पर मौसम प्रतिकूल होता है, जैसे कि अत्यधिक गर्मी या ठंड। बंद आवास प्रणाली में पशुओं के लिए हवा और प्रकाश की उचित व्यवस्था की जाती है ताकि उनका स्वास्थ्य बेहतर बना रहे।

बंद शेड में पशुओं को पूरी तरह से नियंत्रित वातावरण प्रदान किया जाता है, जिसमें तापमान और नमी के स्तर को नियंत्रित किया जा सकता है। इससे पशुओं को तनाव से बचाया जा सकता है और उनकी उत्पादकता में सुधार हो सकता है।

अर्ध–खुला आवास

अर्ध–खुला आवास प्रणाली में पशुओं को दिन के समय खुली जगह में रखा जाता है और रात के समय या प्रतिकूल मौसम के दौरान उन्हें शेड में ले जाया जाता है। यह प्रणाली पशुओं को दोनों प्रकार के वातावरण का लाभ प्रदान करती है। इसमें पशुओं को प्राकृतिक वातावरण का अनुभव होता है, साथ ही उन्हें सुरक्षा और आराम भी मिलता है।

डेयरी फार्म में हेड–टू–हेड और टेल–टू–टेल आवास प्रणाली

डेयरी फार्म में हेड–टू–हेड और टेल–टू–टेल आवास प्रणाली का उपयोग दुग्ध पशुओं की आवास व्यवस्था में प्रमुखता से किया जाता है। इन दोनों प्रणालियों का उद्देश्य पशुओं को बेहतर तरीके से रखने के साथ–साथ दुग्ध उत्पादन प्रक्रिया को सुचारू और कुशल बनाना होता है। दोनों प्रणालियों के विभिन्न लाभ और चुनौतियाँ होती हैं। आइए, इन आवास प्रणालियों को विस्तार से समझते हैं।

हेड–टू–हेड आवास प्रणाली

हेड–टू–हेड आवास प्रणाली में पशुओं को एक दूसरे के आमने–सामने रखा जाता है। इस प्रणाली

में दो पंक्तियों में पशुओं को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उनके सिर सामने की दिशा में होते हैं और उनकी पीठ पीछे होती है। इसका उपयोग डेयरी फार्मों में आमतौर पर किया जाता है क्योंकि यह व्यवस्था कुछ विशेष लाभ प्रदान करती है।

प्रमुख विशेषताएँ

- इस प्रणाली में पशुओं के सिर एक–दूसरे की ओर होते हैं, जिससे वे आमने–सामने खड़े होते हैं।
- फीडिंग ट्रफ इस प्रकार की व्यवस्था में आमतौर पर पशुओं के खाने के लिए एक समान फीडिंग ट्रफ (चारा पात्र) होता है, जहाँ से वे आसानी से भोजन कर सकते हैं।
- पशुओं के सिर सामने होते हैं, इसलिए सफाई और दूध निकालने की प्रक्रिया को आसान बनाया जा सकता है।
- इस प्रणाली में चारे और पानी की व्यवस्था एक ही लाइन में की जाती है, जिससे स्थान का सही उपयोग होता है।

टेल–टू–टेल आवास प्रणाली

टेल–टू–टेल प्रणाली में पशुओं को इस प्रकार रखा जाता है कि उनकी पूंछें एक–दूसरे की ओर होती हैं। इसका मतलब है कि पशुओं के सिर विपरीत दिशा में होते हैं और वे पीठ के साथ पीठ जोड़कर खड़े रहते हैं। इस प्रणाली का उद्देश्य साफ–सफाई में सुधार लाना और फार्म में कार्यकुशलता को बढ़ाना है।

प्रमुख विशेषताएँ

- विपरीत दिशारू इस प्रणाली में पशु एक–दूसरे की विपरीत दिशा में होते हैं, जिससे उनके सिर और चारा खाने की व्यवस्था अलग–अलग होती है।
- आसानी से सफाईरू चूंकि पशुओं की पूंछें एक–दूसरे की ओर होती हैं, इसलिए साफ–सफाई की प्रक्रिया में सहूलियत होती है।
- दूध निकालने में सुविधारू दूध निकालते समय यह प्रणाली अधिक उपयुक्त मानी जाती है, क्योंकि दूध निकालने वाली मशीनों का इस्तेमाल दोनों तरफ से समान रूप से किया जा सकता है।

हेड–टू–हेड और टेल–टू–टेल दोनों आवास प्रणालियाँ डेयरी फार्म के संचालन और प्रबंधन के

लिए उपयोगी हैं। हेड–टू–हेड प्रणाली चारा और पानी की आपूर्ति को सरल बनाती है और पशुओं के बीच घुलनशीलता को बढ़ाती है, जबकि टेल–टू–टेल प्रणाली साफ–सफाई में सहूलियत और दूध निकालने की प्रक्रिया को सुचारू बनाती है। डेयरी फार्म की आवश्यकताओं, स्थान की उपलब्धता, और संसाधनों के आधार पर, पशुपालक इनमें से किसी भी प्रणाली का चयन कर सकते हैं। हर फार्म के लिए सही प्रणाली का चुनाव उसके प्रबंधन लक्ष्यों, पशुओं की संख्या, और उपलब्ध संसाधनों पर निर्भर करता है।

3. आवास प्रबंधन के प्रमुख घटक

स्वच्छता और हाइजीन

आवास की स्वच्छता और हाइजीन दुग्ध पशुओं के स्वास्थ्य और उत्पादकता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। गंदगी और अस्वच्छता पशुओं के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालती है और कई प्रकार के रोग फैलने का कारण बन सकती है। आवास को नियमित रूप से साफ करना चाहिए और गंदगी, मल–मूत्र को सही तरीके से हटाना चाहिए। शेड के फर्श को रोज साफ करना चाहिए और हफ्ते में एक बार रोगाणुरोधी छिड़काव भी करना चाहिए।

उचित वेंटिलेशन

पशुओं के लिए शुद्ध और ताजी हवा का मिलना बेहद जरूरी है। शेड में वेंटिलेशन की सही व्यवस्था न होने पर अमोनिया और अन्य हानिकारक गैसें जमा हो सकती हैं, जिससे पशुओं में श्वसन संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। आवास में पर्याप्त खिड़कियों और वेंटिलेशन की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि ताजी हवा का प्रवाह बना रहे।

तापमान और आर्द्रता नियंत्रण

तापमान और आर्द्रता के स्तर का उचित प्रबंधन दुग्ध पशुओं के आराम और स्वास्थ्य के लिए जरूरी होता है। अत्यधिक गर्मी या ठंड दोनों ही पशुओं की उत्पादकता को प्रभावित कर सकती हैं। गर्मी के मौसम में शेड में शीतलता बनाए रखने के लिए छाया और पानी की व्यवस्था करनी चाहिए, जबकि ठंड के मौसम में शेड को गर्म रखने के लिए उचित प्रबंध किया जाना चाहिए।

प्रकाश व्यवस्था

प्राकृतिक प्रकाश का महत्व पशुओं के स्वास्थ्य के लिए होता है। प्राकृतिक प्रकाश से उनके शरीर में विटामिन क का निर्माण होता है, जो हड्डियों को मजबूत करता है। इसके अलावा, उचित प्रकाश से पशुओं की उत्पादकता भी बढ़ती है। आवास में दिन के समय सूर्य के प्रकाश का पर्याप्त प्रवेश

हो और रात में न्यूनतम आवश्यक प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए।

जल निकासी की व्यवस्था

आवास में जल निकासी की व्यवस्था को सही बनाए रखना आवश्यक है ताकि पानी और अन्य तरल पदार्थों की निकासी सुचारू रूप से हो सके। पानी के ठहराव से नमी पैदा होती है, जो बीमारियों का कारण बन सकती है। शेड का फर्श हल्का ढलान वाला होना चाहिए, ताकि पानी आसानी से बह सके और पशुओं को गीले फर्श पर खड़े रहने से बचाया जा सके।

4. पशुओं के लिए आरामदायक स्थान

दुधारू पशुओं को आरामदायक वातावरण देना उनकी उत्पादकता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। हर पशु को पर्याप्त जगह मिलनी चाहिए ताकि वे आराम से बैठ सकें और खा–पी सकें। जगह की कमी से तनाव और झगड़े हो सकते हैं, जिससे पशुओं की कार्यक्षमता पर बुरा असर पड़ता है। शेड में पर्याप्त जगह का ध्यान रखना चाहिए ताकि पशु स्वतंत्र रूप से घूम सकें और आराम कर सकें।

5. आवास में उपयोगी उपकरण

पशुओं के आवास में कुछ आवश्यक उपकरणों की भी जरूरत होती है, जैसे कि चारा डालने के बर्तन, पानी पीने के पात्र, दूध निकालने की मशीनें, और साफ–सफाई के उपकरण। इन उपकरणों को सही तरीके से व्यवस्थित और नियमित रूप से साफ किया जाना चाहिए ताकि कोई भी स्वास्थ्य संबंधी समस्या न हो।

निष्कर्ष

दुधारू पशुओं का सही देखभाल उनके आवास पर निर्भर करता है। आवास प्रबंधन का उद्देश्य पशुओं को स्वस्थ और उत्पादक बनाए रखना है। सही प्रकार का आवास, उचित स्वच्छता, वेंटिलेशन, तापमान और आर्द्रता नियंत्रण, और पर्याप्त स्थान की व्यवस्था पशुओं के स्वास्थ्य और दुग्ध उत्पादन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। पशुपालकों को यह समझना चाहिए कि उचित आवास प्रबंधन न केवल उनके पशुओं की सेहत में सुधार लाएगा, बल्कि उनके व्यवसायिक लाभ को भी बढ़ाएगा। सही प्रबंधन से पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार होता है और वे अधिक दुग्ध उत्पादन करते हैं, जिससे पशुपालक को दीर्घकालिक लाभ प्राप्त होता है।

11 मृत पशुओं के शव निपटान के तरीके एवं दिशा निर्देश

कौशल कुमार

पशु चिकित्सा विकृति विज्ञान विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना–14

पशुपालन में पशु एक जीव मात्र है इसलिए पशु में सामान्य या कभी कभी असामान्य मृत्यु का होना, आम बात है। मृत पशुओं एवं इनसे पनपने वाले रोग के नियंत्रण के लिए पशु के मृत शरीर का उचित निपटान बहुत ही आवश्यक है। पशुपालन करने का तरीका भिन्न भिन्न देशों में अलग अलग है इसलिए पशु के मृत शरीर का निपटान भी अलग अलग तरीके से किया जाता है।

भारत जैसे विकासशील देशों में सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली मृत शरीर के निपटान की विधियाँ पारंपरिक तरीके की हैं जैसे की मृत शरीर को दफनाना, जलाना, भस्मीकरण, प्रतिपादन और खाद बनाना। परन्तु इन तरीकों से जुड़े कुछ पर्यावरणीय, जैव विविधता, सामाजिक और आर्थिक मुद्दे भी हैं। इन विधियों से जुड़ी पर्यावरणीय बाधाएँ जैसे कि विशेष रूप से कुछ संक्रमणों जैसे टी.एस.ई. (ट्रांसिमिसिबल इसपंजीफॉर्म इनसेफलाइटिस) पशु के मस्तिष्क में सूजन जैसी गंभीर बीमारी पनप सकती है। और अन्य रोगकारक विषाणु जैसे कि प्रियांन के संक्रमणों की दृढ़ता के कारण हवा, मिट्टी और पानी के दूषित होने का खतरा रहता है। यदि पशु के मृत शरीर का निपटान सही विधियों के साथ नहीं किया जाता है तो वातावरण मे अत्यधिक गंध, मक्खी का खतरा और पीने के पानी का दूषित होना जाना आम बात है, जो कि सामान्य जन जीवन के लिए बहुत बड़ा खतरा है।

संक्रामक बीमारी से मरने वाले जानवरों के शवों का उचित निपटान बीमारियों के प्रसार को रोकने में सबसे महत्वपूर्ण है, और एंथ्रेक्स जैसे बीमारी के मामले में तथा मानव संक्रमण को रोकने के लिए शवों को बहते पानी की एक धारा में या उसके पास जमा करके कभी नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि यह संक्रमण को बहने वाले बिंदुओं तक ले जाएगा और बीमारी का प्रकोप चारों ओर फैल जाएगा। एक संक्रामक बीमारी से मरने वाले पशु को शेड में अधिक समय तक रहने नहीं देना चाहिए क्योंकि कीड़े, कृंतक, आदि उस तक पहुंच सकते हैं और बीमारी का प्रसार स्वास्थ्य पशुओं में कर सकते हैं। मृत पशुओं के शव का निपटान निम्न बिधियों द्वारा किया जाता है।

पशु के शव को दफनाना

यह तरीका शव के निपटान करने में सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाता है। यह सबसे पुराना तरीका है।शव को गहरे गड्ढे में मिट्टी में दफनाना एक सुरक्षित तरीका है, परन्तु यह ध्यान देना चाहिए की आस पास के स्थानों पर जल निकासी न हो नहीं तो जल के दूषित होने का खतरा बना रहता है। गड्ढे की गहराई इतनी होनी चाहिए की कीड़े, जीवाणुओं को सतह पर ना ले जा सके और मांसाहारी जानवर शव को ना खोद सकें। शव को कभी भी जमीन पर नहीं खींचना चाहिए

उसे ट्रॉली में लादकर दफन स्थान तक ले जाना चाहिए। शव का वहां ले जाने से पहले दफन गड्ढे को तैयार किया जाना चाहिए। गड्ढे को इतना खोदा जाना चाहिए कि शव के रू का उच्चतम हिस्सा आसपास के इलाके के जल स्तर से कम से कम 1.5 मीटर नीचे होना चाहिए, शव के आकार के आधार पर दफन गड्ढू की चौड़ाई और लंबाई होनी चाहिए। मरे हुए जानवरों के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला विस्तर, उसका मलमूत्र, उसके द्वारा बचा हुआ चारा और शीर्ष 5 से भी मिट्टी का रूप जहाँ जानवर मृत हुआ था (यदि फर्श पक्का ना हो) भी शव के साथ दफनाया जाना चाहिए। दफन जगह का चुनाव हमेशा आस पास के जल स्तर जमीन से कम से कम 2.5 मीटर नीचे होना चाहिए। शव पर चूने का पाऊडर डाला जाना चाहिए तथा मिट्टी और कुछ चट्टानों के साथ शव को अच्छी तरह ढक देना चाहिए।

दफनाने की जगह चुनते समय, इन बातों का ध्यान रखें:

- आस–पास कोई भूमिगत जल स्रोत या बाढ़ आने वाले क्षेत्र न हों.
- जमीन में बहुत ज्यादा रेत न हो.
- सर्दियों में दफनाना मुश्किल होता है.
- सर्दियों के दौरान, गर्मियों में लंबी खाई खोदकर, शवों को दफनाना आर्थिक रूप से फायदेमंद हो सकता है.
- खाई वाले क्षेत्र को बाड़ लगाना चाहिए, क्योंकि खुली खाई सुरक्षा के लिए खतरा हो सकती है.

शव को जलाना

यह तरीका शवों को नष्ट करने के लिए सबसे सुरक्षित माना जाता है। जलाने के स्थान पर कम से कम 0.5 मीटर गहरी, शव की लंबाई और चौड़ाई के आकार की खाई होनी चाहिए। खाई को पहले लकड़ी से भर दिया जाता है और कुछ लोहे की सलाखों को इसके ऊपर रखा जाता है और शव को उसमें रखा गया है। पशु के साथ उसके इस्तेमाल में आई सभी सामग्रियों को भी भष्म कर दिया जाता है। विशेष रूप से शहरों में मरे हुए शवों और कत्लखाने के कचरे को निपटाने के लिए आधुनिक विद्युत इंसीनेटर स्थापित किए जा सकते हैं। जब शव रोगग्रस्त हो, तो भस्मीकरण का उपयोग करना बेहतर तरीका है.

शव का प्रतिपादन / रेंडरिंग

प्रतिपादन शब्द का तात्पर्य शवों को तोड़कर कर छोटे आकार में परिवर्तित करना होता है। पीसने के बाद मांस और हड्डी को अलग किया जाता है तथा प्राप्त कणों को गर्म करके, वसा, प्रोटीन पदार्थ, पानी को अलग करते हैं जिससे जरूरत के अनुसार बिभिन्न जगहों पर ईस्तेमाल किया जाता है। मृत पशुधन कार्बनिक पदार्थों का एक जबरदस्त स्रोत है। एक विशिष्ट ताजा शव में लगभग 32% सूखा पदार्थ होता है, जिसमें से 52% प्रोटीन होता है, 41% वसा होता है, और 6% राख होता है। प्रतिपादन प्रक्रिया से सुरक्षित और मूल्यवान उत्पादों का उत्पादन होता है। रेंडरिंग

प्रक्रियाओं का हीट ट्रीटमेंट करके कच्चे माल में मौजूद सूक्ष्मजीवों को मारकर तैयार उत्पादों के भंडारण के समय को बढ़ाया जाता है। जिन भेड़ों या मवेशियों में स्क्रैपी या बीएसई रोग होने का संदेह है, उन्हें रेंडर नहीं किया जाना चाहिए।

मृत शव का खाद बनाना (कंपोस्टिंग)

कंपोस्टिंग की प्रक्रिया में कार्बन–समृद्ध उत्पाद जैसे की धान या गेहूं का भूसा, चूरा या चावल के ढेर के बीच शवों को रखा जाता है, जिसमें मृत पशु के ढेर पर कार्बन–समृद्ध उत्पाद से ढका जाता है। मृत शवों को आमतौर पर एकल परतों में ही रखा जाता है, जबकि पोल्ट्री बहु परत में रखी जा सकती है। शव के वजन के आधार पर, अपशिष्ट पदार्थ एक उपयोगी उत्पाद में 1–2 किग्रा. / 43 दिन के रूप में उच्च दरों पर विघटित हो जाता है जिसे खाद के रूप में मिट्टी संशोधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

निष्कर्ष

हालांकि शवों को विभिन्न पारंपरिक तरीकों जैसे दफन, भस्मीकरण, प्रतिपादन या लैंडफिलिंग द्वारा निपटाया जाता है, लेकिन इनमें से प्रत्येक विधि में नुकसान भी हैं। शव दफन करने से भूजल प्रदूषण होता है, भस्म में अधिक पूंजी शामिल होती है और वायु को प्रदूषित करती है। शव के प्रतिपादन में अधिक पूंजी लगती है।लैंडफिलिंग में भूमि की उपलब्धता की कमी का सामना करना पड़ता है। किसानों द्वारा पालन करने के लिए विभिन्न कानूनी औपचारिकताओं के कारण व्यापक गैर–अनुपालन के परिणामस्वरूप अवैध डंपिंग आदि के कारण संभावित रूप से अधिक पर्यावरणीय जोखिम पैदा हो गया है। रेंडरिंग और कंपोस्टिंग जैसी प्रक्रियाओं ने कई देशों में अपनी अंतिम उत्पाद उपयोगिता के कारण लोकप्रियता हासिल की है। विभिन्न विधानों के अनुसार शवों के निपटान के नए तरीकों को विकसित और मान्य किए जाने की वास्तविक आवश्यकता है। यह महत्वपूर्ण है कि पर्यावरण और जैव विविधता के दृष्टिकोण से सुरक्षित होने के लिए मृत्यु दर निपटान प्रणाली यथार्थवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। भविष्य में आगे के अध्ययन और मूल्यवान उत्पादों के निष्कर्षण जैसे कुछ पहलुओं का अध्ययन किया जाना है। निपटान प्रणाली के आर्थिक प्रभावों पर आगे के अनुसंधान की भी आवश्यकता है ताकि उनकी व्यावहारिक उपयोगिता को कृषि के साथ– साथ ऑफ–फार्म पर भी देखा जा सके। इसलिए इस उद्देश्य के लिए तकनीकी रूप से व्यवहार्य और आर्थिक रूप से व्यवहार्य विधि विकसित करने से बड़े और छोटे पैमाने पर पशुधन फार्म और प्रसंस्करण इकाइयों दोनों को लाभ होगा। इस संबंध में कुशल विधि के साथ पशु शवों का शीघ्र निपटान स्वस्थ और लाभदायक पशुपालन गतिविधि को बढ़ाने के लिए एक महत्वपूर्ण अपशिष्ट प्रबंधन उपकरण है।

12 छेना, खोआ और इनसे आधारित पारम्परिक मिठाइयाँ बनाने की विधि

सोनम कुमारी[1], योगेंद्र सिंह जादौन[2] एवं सुमित मेहता[3]

[1]डेयरी प्रौद्योगिकी विभाग, संजय गांधी डेयरी प्रौद्योगिकी संस्थान, पटना (बिहार)

[2]गव्य प्रसार शिक्षा विभाग, संजय गांधी डेयरी प्रौद्योगिकी संस्थान, पटना (बिहार)

[3]डेयरी इंजीनियरिंग प्रभाग, डेयरी एवं खाद्य प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, बस्सी, जयपुर , (राजस्थान)

परिचय

भारत में कोई भी त्योहार, शादी या विशेष अवसर दूध से बनी मिठाइयाँ या उत्पादों को परोसे बिना पूरा नहीं होता। भारतीय संस्कृति में इन मिठाइयों का विशेष महत्व है, और इन्हें हर खुशी के मौके पर अनिवार्य रूप से शामिल किया जाता है। भारतीय / पारंपरिक दूध उत्पादों को दूध की पौष्टिक अच्छाई को बनाए रखने और उच्च परिवेश तापमान के तहत शेल्फ–लाइफ को बढ़ाने के लिए विकसित किया गया था। आज भारत में दूध का उत्पादन तेजी से बढ़ रहा है; इसलिए अधिशेष दूध उत्पादन को संरक्षित करने की जिम्मेदारी अब खाद्य प्रसंस्करणकर्ताओं पर है। विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार, हाथ से बने डेयरी व्यंजनों का व्यापक पैमाने पर उत्पादन प्रौद्योगिकियों की एक विस्तृत श्रृंखला के औद्योगिक अनुप्रयोग के माध्यम से किया जा रहा है।

वर्तमान समय में, न केवल भारत में बल्कि विदेशों में भी दूध आधारित पारंपरिक उत्पादों और मिठाइयों के निर्यात में रुझान और रुचि बढ़ रही है। इस बढ़ती मांग के चलते, इन उत्पादों के व्यावसायीकरण की बहुत बड़ी गुंजाइश मौजूद है, जिससे न केवल देश की अर्थव्यवस्था को लाभ हो सकता है, बल्कि वैश्विक स्तर पर भारतीय परंपरा और संस्कृति का प्रचार–प्रसार भी किया जा सकता है।

छेना

खाद्य मानक और सुरक्षा अधिनियम; 2011 के अनुसार छेना गाय या भैंस के दूध या खट्टे दूध, लैक्टिक एसिड या साइट्रिक एसिड के साथ अवक्षेपण द्वारा इसके मिश्रण से प्राप्त उत्पाद है। इसमें 65 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए और इसकी दूध वसा सामग्री शुष्क पदार्थ (कुल ठोस पदार्थ) के आधार पर 50 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए। इस उत्पाद को तैयार करने में दूध के ठोस पदार्थों का भी उपयोग किया जा सकता है।

छेना निर्माण की विधि

छेना बनाने के लिए गाय के दूध को प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि इससे नरम और स्पंजी उत्पाद प्राप्त होता है। दूध को पहले लोहे/स्टेनलेस स्टील की कढ़ाई में लगातार हिलाते हुए उबालने के लिए गर्म किया जाता है। फिर दूध को 80 डिग्री सेल्सियस तक ठंडा किया जाता है और 60 सेकंड के भीतर 0.5 – 2.0 प्रतिशत साइट्रिक एसिड या लैक्टिक एसिड के घोल के साथ इसे हिलाते हुए जमाया जाता है। जब मट्ठा साफ हो जाता है, तो छेना को मलमल के कपड़े से छान लिया जाता है। फिर जमे हुए द्रव्यमान को मलमल के कपड़े में तब तक लटकाया जाता है जब तक कि टपकना बंद न हो जाए। 4–5 प्रतिशत वसा वाले दूध को बिना पकड़े उबलने के करीब गर्म किया जाता है। इसके बाद, दूध का तापमान 80 डिग्री सेल्सियस तक लाया जाता है और 1–2 प्रतिशत सांद्रता के जमावट वाले एसिड घोल का उपयोग करके इस तापमान पर जमाया जाता है। एसिड घोल को लगातार हिलाते हुए दूध में मिलाया जाता है जब तक कि साफ मट्ठा अलग न हो जाए। जमा हुआ द्रव्यमान एक मलमल के कपड़े में इकट्ठा किया जाता है और मट्ठा के पूरी तरह से निकलने के लिए लटका दिया जाता है। अंत में छेना को उपयुक्त पैकेजिंग सामग्री में पैक किया जाता है और प्रशीतन/कोल्ड स्टोर के तहत संग्रहीत किया जाता है।

छेना आधारित मिठाइयाँ

छेना का उपयोग कई भारतीय मिठाइयों जैसे रसगुल्ला, संदेश, रसमलाई, राजभोग, छेना मुरकी, चमचम आदि बनाने में आधार सामग्री के रूप में किया जाता है। छेना आधारित मिठाइयों में, दूध प्रोटीन उत्पाद की संरचना और बनावट का आधार बनता है।

रसगुल्ला बनाने की विधि

रसगुल्ला मुलायम और ताजे बने छेना से बनाया जाता है। रसगुल्ला बनाने के लिए छेना को गूंथकर मुलायम पेस्ट बनाया जाता है और फिर 15–20 मिमी व्यास और 10–12 ग्राम वजन के छोटे–छोटे गोले बनाए जाते हैं। गोलों की सतह चिकनी और दरार रहित होनी चाहिए। भैंस के दूध के छेना के मामले में , अरारोट, सूजी और बेकिंग पाउडर को मिलाया जाता है और हाथ से गूंथकर मुलायम पेस्ट बनाया जाता है। रसगुल्ला के गोले 50–60 प्रतिशत चीनी सांद्रता वाली चाशनी में लगभग 15–20 मिनट तक पकाए जाते हैं। पकाने के दौरान चीनी की सांद्रता बनाए रखने के लिए थोड़ी मात्रा में पानी लगातार मिलाया जाता है। यह वाष्पीकरण के कारण होने वाले पानी के नुकसान की भरपाई करता है। रसगुल्ला पकाने के बाद गोले को 40–45 प्रतिशत चीनी

की चाशनी में लगभग 1–2 घंटे तक भिगोया जाता रसगुल्ले की उपज प्रति 100 ग्राम छेना में लगभग 240–260 ग्राम होती है ।

संदेश निर्माण की विधि

छेना को गूंथकर या पीसकर चिकना पेस्ट बना लिया जाता है और दो बराबर भागों में बांट लिया जाता है। छेना के कुल वजन का 30 प्रतिशत पिसी हुई चीनी छेना के एक भाग में मिला दी जाती है। फिर मिश्रण को एक उथले बर्तन में लगातार हिलाते हुए और खुरचते हुए धीरे–धीरे पकाया जाता है और तापमान 75 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ा दिया जाता है। जब पैटिंग चरण आ जाता है तो छेना का दूसरा भाग भी इसमें मिला दिया जाता है। इस मिश्रण को गर्म करना और खुरचना तब तक जारी रहता है जब तक कि अंतिम तापमान 60 डिग्री सेल्सियस न हो जाए। उसके बाद, मिश्रण को कमरे के तापमान पर ठंडा किया जाता है और मनचाहे आकार और आकृति में ढाला जाता है। संदेश की औसत उपज 16.50 – 20.50 प्रतिशत तक होती है।

रसमलाई बनाने की विधि

दूध को लगातार हिलाते हुए खुले बर्तन में गर्म किया जाता है ताकि वह वाष्पित होकर अपनी मूल मात्रा का लगभग आधा रह जाए। इस स्तर पर मूल दूध में 4.0 प्रतिशत की दर से चीनी डाली जाती है। धीमी आग पर गर्म करना और हिलाना तब तक जारी रखा जाता है जब तक कि सामग्री अपनी मूल मात्रा का लगभग एक तिहाई न रह जाए। गर्म करने के दौरान चीनी मिलाने से अंतिम उत्पाद को सुखद स्वाद और लजीज स्वाद मिलता है। इसके बाद, इस गाढ़े दूध में चपटे गोलाकार रसगुल्ले डाले जाते हैं और सामग्री को कुछ मिनटों (2–5 मिनट) के लिए और गर्म किया जाता है। इसके बाद, कंटेनर को आग से हटा दिया जाता है और सामग्री को कमरे के तापमान पर ठंडा होने दिया जाता है, ठंडा किया जाता है और रेफ्रिजरेटर में संग्रहीत किया जाता है। उत्पाद को ठंडा परोसा जाता है। रसमलाई की शेल्फ लाइफ 3–5 दिनों की होती है।

छना मुरकी

छना – मुरकी चीनी में लिपटी छना आधारित मिठाई है। यह उत्पाद देश के उत्तरी भागों में बहुत लोकप्रिय है। इसे मुख्य रूप से शादियों और दावतों के दौरान परोसा जाता है। छना – मुरकी चीनी में लिपटे छोटे क्यूब्स के आकार का होता है और इसका शरीर सख्त और बनावट में एक जैसा होता है। इस मिठाई को बनाने के लिए भैंस के दूध को प्राथमिकता दी जाती है।

छेना मुरकी बनाने की विधि

छेना या पनीर को लगभग 10 मिमी के छोटे क्यूब्स में काटा जाता है। क्यूब्स को उबलते चीनी के सिरप (3 तार की स्थिरता) में एक खुले बर्तन (करही) में लगभग पाँच मिनट तक धीरे–धीरे हिलाते हुए पकाया जाता है। बर्तन को आग से हटा दिया जाता है और तब तक हिलाना जारी रखा जाता है जब तक कि क्यूब्स के चारों ओर चीनी समान रूप से लेपित न हो जाए। पके हुए क्यूब्स को फिर चाशनी से निकाल दिया जाता है। ठंडा होने के बाद, केवड़ा फ्लेवर की कुछ बूँदें छिड़की जाती हैं। चीनी की चाशनी में खाद्य ग्रेड रंगों का उपयोग करके उत्पाद को रंगा जा सकता है।

खोआ निर्माण विधि

खोवा दूध (अधिमानतः भैंस का दूध) को उथले, बड़े, खुले हल्के स्टील या स्टेनलेस स्टील के पैन में उबालकर प्राप्त किया जाता है, जिसमें दो हैंडल होते हैं जिन्हें ' करही ' कहा जाता है। प्रारंभिक गर्मी सुखाने की प्रक्रिया के दौरान दूध को लगातार हिलाया जाता है, और उत्पादन के अंत में जब दूध अर्ध–ठोस स्थिरता तक पहुँच जाता है, तो इसे कारमेलाइजेशन और भूरापन रोकने के लिए खुरच कर निकाला जाता है। यह सरगर्मी और खुरचने का काम चपटी धार वाली, लंबे हैंडल वाली धातु की करछुल/खुरचनी का उपयोग करके किया जाता है जिसे ' खूंटी ' कहा जाता ळें पारंपरिक रूप से खोवा बनाने के लिए 4–5 लीटर दूध को एक उथले लोहे या हल्के स्टील के बर्तन में डालकर उसे धुआँ रहित आग पर लगातार हिलाते हुए गर्म किया जाता है। धीरे–धीरे गर्म करने पर दूध गाढ़ा हो जाता है और सतह पर जमी हुई ठोस वस्तु दिखाई देने लगती है। इस द्रव्यमान को लगातार खुरच कर गाढ़े दूध में वापस लाया जाता है । जब लगातार तेज़ वाष्पीकरण के साथ लगभग 2.5 से 3 गुना सांद्रता प्राप्त हो जाती है, तो जमे हुए कणों को एक साथ लाकर एक मिश्रण बनाया जाता है। प्रक्रिया के अंतिम चरण में बर्तन को आग से हटा दिया जाता है और कलछी से खोवा को चलाया जाता है ।

खोआ आधारित मिठाइयाँ

बर्फी

बर्फी खोआ आधारित लोकप्रिय मिठाई है जिसमें चीनी मिलाई जाती है और यह खपत में प्रमुखता रखती है। बाजार में बर्फी के कई प्रकार बेचे जाते हैं, जैसे मावा बर्फी , चॉकलेट बर्फी , अखरोट की बर्फी , फल की बर्फी , रवा बर्फी , आदि। बर्फी की तैयारी में महत्वपूर्ण चरण शामिल हैंः दूध को

खोवा में सुखाना , चीनी (खोवा का 30 प्रतिशत) को क्रिस्टलीय रूप में या चीनी की चाशनी के रूप में शामिल करना, अन्य अवयवों का मिश्रण, और वांछित शरीर और बनावट विशेषताओं को प्राप्त करने के लिए बाद में सुखाना। रंग और स्वाद सामग्री, यदि कोई हो, क्रमशः तैयारी के प्रारंभिक या अंतिम चरणों में डाली जाती है। गर्म, अर्ध–ठोस द्रव्यमान को पहले से तैयार सांचों में डाला जाता है और वांछित स्थिरता प्राप्त होने तक ठंडा किया जाता है। ठंडा होने के बाद, द्रव्यमान को आवश्यक आकार और आकृति के टुकड़ों में काटा जाता है और पैक किया जाता है।

कुटीर पैमाने पर, बर्फी को हल्के स्टील के उथले बर्तनों का उपयोग करके छोटे बैचों में तैयार किया जाता है। जब दूध से सीधे तैयार किया जाता है, तो वसाःएसएनएफ अनुपात 1:1.5 वाला भैंस का दूध बेहतर होता है।

पेड़ा

पेड़ा बनाने के लिए ताजे बने खोये को छोटे–छोटे टुकड़ों में तोड़कर उसमें पिसी चीनी (वजन के हिसाब से 30–35 प्रतिशत मिलाई जाती है। सामग्री को कढ़ाई में डालकर बहुत धीरे–धीरे, बिना धुएँ वाली आग पर पकाया जाता है, खूँटी के साथ सारी सामग्री को हिलाया जाता है , मनचाहा स्वाद देने के लिए पिसी इलायची डाली जाती है। फिर मिश्रण को ट्रे में डालकर ठंडा होने दिया जाता है। अगर चाहें तो मेवे और स्वाद बढ़ाने वाले पदार्थ भी डाले जा सकते हैं। सामग्री को अच्छी तरह से मिलाया जाता है और हथेलियों के बीच घुमाकर 15–20 ग्राम आकार की गेंदें बनाई जाती हैं और पेड़ा के गोल या चपटे टुकड़े बनाए जाते हैं। पेड़ा का रंग सफ़ेद पीला होता है और इसकी बनावट मोटे दानेदार होती है।

गुलाब जामुन

गुलाबजामुन भारत में खोआ आधारित बहुत लोकप्रिय मिठाई है । गुलाबजामुन धाप प्रकार के खोये (300 ग्राम) से 100 ग्राम मैदा और 3 ग्राम बेकिंग पाउडर के साथ तैयार किया जाता है । खोया , मैदा और बेकिंग पाउडर के मिश्रण को पर्याप्त मात्रा में पानी के साथ एक समान आटा गूंथ लिया जाता है। फिर आटे को विभाजित करके छोटी–छोटी गेंदों (8–10 ग्राम प्रत्येक) में रोल किया जाता है। फिर गेंदों को वनस्पति तेल/घी में समान रूप से डीप फ्राई किया जाता है (130–140 डिग्री सेल्सियस) जब तक कि वे सुनहरे भूरे रंग की न हो जाएं। तली हुई गुलाबजामुन गेंदों को ठंडा करने के बाद कुछ घंटों के लिए 62.5 प्रतिशत ताकत वाली चीनी की चाशनी में डुबोया जाता है।

कलाकंद

कलाकंद अपनी अनूठी दानेदार बनावट के लिए जाना जाता है। कलाकंद का रंग ऑफ–व्हाइट से लेकर हल्के भूरे या कारमेल तक भिन्न होता है। कलाकंद बनाने के लिए भैंस के दूध में 6.0 प्रतिशत वसा और 9.0–9.5 प्रतिशत एसएनएफ सबसे उपयुक्त होता है। दूध को उथली लोहे की कढ़ाई में लिया जाता है और धुंआ रहित आग पर गर्म किया जाता है। जलने से बचाने के लिए गर्म करने वाली सतह को हटाते हुए गोलाकार गति में लगातार हिलाया जाता है। दूध की मात्रा का 0.02 प्रतिशत साइट्रिक एसिड,1–2 प्रतिशत घोल के रूप में दूध में10–15 मिनट उबलने के बाद मिलाया जाता है। साइट्रिक एसिड मिलाने से उत्पादन के अंत में जुड़े हुए दानेदार द्रव्यमान के निर्माण में मदद मिलती है। जब अर्ध–ठोस अवस्था प्राप्त हो जाती है, तो दूध के वजन से 6–7 प्रतिशत की दर से चीनी डाली जाती है और अच्छी तरह से हिलाया जाता है। इस स्तर पर अन्य स्वाद और मेवे भी डाले जा सकते हैं। गर्म करना 5 मिनट तक जारी रहता है। तैयार द्रव्यमान को फिर पहले से चिकनी की गई ट्रे में स्थानांतरित कर दिया जाता ।

निष्कर्ष

भारत में दूध से बनी मिठाइयों और उत्पादों का महत्व केवल पारंपरिक खाद्य पदार्थों तक सीमित नहीं है। ये मिठाइयाँ न केवल स्वादिष्ट होती हैं बल्कि पोषण से भरपूर होती हैं, जो इन्हें हर उम्र के लोगों में लोकप्रिय बनाती हैं। आधुनिक युग में, पारंपरिक भारतीय दूध उत्पादों का महत्व और भी बढ़ गया है, क्योंकि वे न केवल देश के भीतर बल्कि अंतरराष्ट्रीय बाजारों में भी तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। दूध आधारित उत्पाद, जैसे छेना, खोआ, और दही, विशेष रूप से भारत में उत्पन्न हुए हैं और उनकी उत्पादन विधियों ने पीढ़ी दर पीढ़ी लोगों को प्रभावित किया है। अब, इन पारंपरिक विधियों को आधुनिक तकनीक के साथ जोड़कर, भारत न केवल अपनी सांस्कृतिक धरोहर को संजोए हुए है बल्कि वैश्विक बाजारों में भी अपनी जगह बना रहा है।

13 दुग्ध एक संपूर्ण आहार

रोहित कुमार जयसवाल, सुषमा कुमारी एवं गार्गी महापात्रा
पशुधन उत्पाद प्रौद्योगिकी विभाग
बिहार वेटरनरी कालेज, बिहार एनिमल साइंसेस यूनिवर्सिटी, पटना

दूध को संपूर्ण भोजन कहा जाता है क्योंकि इसमें बहुत सारा प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, वसा, एंटीऑक्सिडेंट और कई आवश्यक खनिज होते हैं जो विकास और अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होते हैं।

इसमें भरपूर मात्रा में उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन और सभी नौ आवश्यक अमीनो एसिड होते हैं। इसमें कैल्शियम, विटामिन–डी, फॉस्फोरस और मैग्नीशियम जैसे पोषक तत्व होते हैं जो हड्डियों और स्वास्थ्य के लिए अच्छे होते हैं। वर्ष २०२१–२२ में वैश्विक दूध उत्पादन में २४% का योगदान देते हुए भारत दुनिया में दूध उत्पादक देश के रूप में शीर्ष स्थान पर है। भारत ने पिछले आठ वर्षों में दूध उत्पादन में ५१% की वृद्धि दर्ज की है। २०२१–२२ के दौरान देश में कुल दूध उत्पादन २२१.०६ मिलियन टन है। शीर्ष पांच प्रमुख दूध उत्पादक राज्य राजस्थान (१५.०५%), उत्तर प्रदेश (१४.६३%) मध्य प्रदेश (८.०६%) गुजरात (७.५६%) और आंध्रप्रदेश (६.६७%) हैं।

दूध की परिभाषाः दूध को एक या एक से अधिक स्वस्थ दुधारू पशुओं के पूर्ण दूध दोहन से प्राप्त संपूर्ण, ताजा, स्वच्छ, लैक्टियल स्राव है, इसमें पशु के ध्यानें के १५ दिन पूर्व तथा १० दिन बाद तक का दूध सम्मिलित नहीं है । इसमें दुग्ध वसा तथा वसा विहीन पदार्थों की न्यूनतम मात्रा क्रमश ३. २५% एवं ८.५% होनी चाहिए।

दूध के स्रोतः

गायः गाय दूध का प्रमुख स्रोत है और यह एक महत्वपूर्ण पशुजीवन है। गाय का दूध अनेक देशों में रोजाना उपयोग होता है।

भैंसः भैंस भी एक और महत्वपूर्ण दूध का स्रोत होती है। इसका दूध बहुत पोषणीय और स्वादिष्ट होता है और कई जगहों पर दूध उत्पादन के लिए पाला जाता है।

बकरीः बकरी का दूध भी कुछ क्षेत्रों में महत्वपूर्ण रूप से उपयोग किया जाता है, ख़ासकर उसके दूध से बनाए जाने वाले उत्पादों के लिए।

मृगः कुछ समुद्र तटों पर, मृगों के दूध का उपयोग उपचार के लिए किया जा सकता है।

इन स्रोतों से प्राप्त दूध व्यक्ति के आहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और उसके पोषण को सुनिश्चित करने में मदद करता है।

खाद्य अपमिश्रण निवारण (पीएफए) नियम, १९७६ के अनुसार, भारत में दूध की विभिन्न श्रेणियों के मानक इस प्रकार होने चाहिएः

दूध का वर्ग	वसा(%)	वसा विहीन पदार्थ(%)
भैंस का दूध	५.०–६.०	९.०
गाय का दूध	३.५–४.०	८.५
बकरी का दूध	३.०–३.५	९.०
भेड़ का दूध	३.०–३.५	९.०
मानकीकृत दूध	४.५	८.५
पुनर्संयोजित दूध.	३.०	८.५
टोंड दूध	३.०	८.५
डबल टोंड दूध	१.५	९.०
स्किम्ड दूध	०.५	८.७
मिश्रित दूध	४.५	८.५
फुल क्रीम दूध	६.०	९.०

दूध का संघटनः

दूध का संघटन प्रमुख रूप से पानी, वसा, प्रोटीन, लैकटोज (दूध शुगर) विटामिन्स और खनिजों का मिश्रण होता है। दूध का एक सामान्य संघटन इस प्रकार हैः

पानीः दूध में लगभग ८५–९०% पानी होता है।

वसाः दूध में लगभग ४.६–६.६% वसा होता है, जिसमें ट्राइग्लिसराइड, फैटी एसिड्स, और फैट–सॉल्यूबल विटामिन्स शामिल होते हैं।

प्रोटीनः दूध के मुख्य प्रोटीन केसिन और व्ही प्रोटीन होते है जो दूध के लगभग ३.४% का हिस्सा होते हैं।

लैकटोजः दूध शुगर (लैकटोज) दूध के लगभग 4–5% का हिस्सा होता है।

विटामिन्सः दूध विभिन्न विटामिन्स (०.५–१%) का स्रोत होता है, जैसे कि विटामिन ए, बी विटामिन्स (बी2, बी12 आदि), विटामिन डी और अन्य।

खनिजः दूध में कैल्शियम, पोटैशियम, फॉस्फोरस, और मैग्नीशियम जैसे महत्वपूर्ण खनिज (०.५–१%) होते हैं।

विभिन्न प्रजातियों के दूध की रासायनिक संरचनाः

प्रजाति	रासायनिक संरचना(:)				
	जल	वसा	प्रोटीन	लैक्टोज	ऐस
भैंस	८४.२	६.६	३.९	५.२	०.८
ऊँट	८६.५	३.१	४.०	५.६	०.८
गाय	८६.६	४.६	३.४	४.९	०.७
बकरी	८६.५	४.५	३.५	४.७	०.८
घोड़ी	८९.१	१.६	२.७	६.१	०.५
मानव	८७.७	३.६	१.८	६.८	०.१

दूध का पोषक मूल्यः
दूध लगभग एक आदर्श भोजन है, इसमें उच्च पोषक तत्व होते हैं।

प्रोटीनः दूध के प्रोटीन का महत्व हमारे स्वास्थ्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, और यह हमारे शारीरिक और मानसिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दूध के प्रोटीन विभिन्न प्रकार के अमीनो एसिड्स का स्रोत होते हैं, जो शारीरिक विकास और रख–रखाव के लिए आवश्यक हैं। विशेष रूप से बच्चों के लिए दूध के प्रोटीन उनके उच्चारित आकर्षण के निर्माण में मदद करते हैं। दूध के प्रोटीन शरीर को ऊर्जा प्रदान करने में मदद करते हैं।

वसाः दूध की वसा, जिसे मिल्क फैट भी कहा जाता है, उपभोक्ताओं के लिए एक महत्वपूर्ण पोषण तत्व है। यह वसा दूध के गुणवत्ता और स्वाद को बढ़ाता है, लेकिन इसका महत्व सिर्फ इसके स्वाद में ही नहीं है, बल्कि इसके कई महत्वपूर्ण कार्य हैं। दूध की वसा में विटामिन डी और ए के साथ साथ अन्य मिनरल्स भी होते हैं जो शरीर के लिए आवश्यक होते हैं। इससे हड्डियों को मजबूती मिलती है और शरीर के उपयोग के लिए ऊर्जा प्रदान करती है। वसा के बिना, विटामिन डी का शरीर में संतुलन बिगड़ सकता है, जिससे बोन्स हेल्थ पर असर पड़ सकता है। यह शरीर की रक्त और मांसपेशियों के स्वास्थ्य के लिए भी महत्वपूर्ण है। वसा आवश्यक फैट एसेंशियल फैट्स(लिनोलिक और एराकिडोनिक एसिड) की एक अच्छी स्रोत होती है, जो शरीर के लिए आवश्यक होते हैं। इससे शरीर के सारे कार्य सही तरीके से संचालित होते हैं।

लैक्टोजः लैक्टोज एक प्रकार का शुगर होता है जो दूध में पाया जाता है और यह हमारे स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। लैक्टोज एक महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत होता है। यह हमारे शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है, जिससे हम अपने दिन के कार्यों को सही तरह से संभाल सकते हैं. लैक्टोज का पाचन होना आसान होता है और इसे शरीर द्वारा अच्छी तरह से अवशोषित किया जा सकता है। यह हमारे पाचन प्रक्रिया को सुधारने में मदद करता है। लैक्टोज बच्चों के लिए आवश्यक होता है, और यह दूध का महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह उनके सही विकास और पोषण के लिए आवश्यक होता है। लैक्टोज प्रोबायोटिक्स के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है, जो हमारे पाचन प्रक्रिया को स्वस्थ रखने में मदद करता हैं। लैक्टोज का सही मात्रा में सेवन करना हमारे स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है, लेकिन यदि आपको लैक्टोज प्रतिक्रिया (लैक्टोज इंटॉलरेंस) होती है, तो आपको डैरी उत्पादों का संवेदनशीलता से सावधानी बरतनी चाहिए।

विटामिनः दूध विटामिन ए, डी, थायमिन, राइबोफ्लेविन आदि का अच्छा स्रोत है। ये सहायक खाद्य कारक हैं जो जीवों के सामान्य विकास, स्वास्थ्य और प्रजनन के लिए आवश्यक हैं।

खनिजः दूध में पाए जाने वाले व्यावहारिक रूप से सभी खनिज तत्व पोषण के लिए आवश्यक हैं।

दूध कैल्शियम, फास्फोरस का एक उत्कृष्ट स्रोत है, ये दोनों विटामिन–डी के साथ मिलकर हड्डियों के निर्माण के लिए आवश्यक हैं।

ऊर्जा : ऊर्जा देने वाले दूध के घटक और उनके व्यक्तिगत योगदान इस प्रकार हैं–

दूध में वसा– ९.३ कैलोरी / ग्राम
प्रोटीन– ४.१ कैलोरी / ग्राम
कार्बोहाइड्रेट– ४.१ कैलोरी / ग्राम

ध्यान दें: दूध का ऊर्जा मूल्य इसकी संरचना के साथ भिन्न होता है। औसतन, गाय का दूध ७५ कैलोरी / १०० ग्राम और भैंस का दूध १०० कैलोरी / १०० ग्राम प्रदान करता है।

उचित स्वास्थ्य और विकास के लिए संतुलित आहार आवश्यक है। संतुलित आहार के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करने में दूध और दूध उत्पादों की भूमिका तालिका में दर्शाई गई है–

पोषक तत्व	उद्देश्य
प्रोटीन	शरीर को ऊर्जा और गर्मी प्रदान करता है। मांसपेशियों के निर्माण और मरम्मत के लिए आवश्यक है ।
वसा	शरीर को ऊर्जा और गर्मी प्रदान करता है।
विटामिन–ए	आँखों का विकास एवं स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। त्वचा और श्लेष्मा झिल्ली की संरचना में आवश्यक है।
विटामिन–बी	विकास, त्वचा और मुँह का स्वास्थ्य, आँखों की कार्यप्रणाली में आवश्यक है।
खनिज	हड्डी, दांत शरीर की कोशिकाएं के लिए आवश्यक है।
नियासिन	पेट, आंत और तंत्रिका तंत्र की कार्यप्रणाली के लिए आवश्यक है।
विटामिन–डी	कैल्शियम अवशोषण में सहायता करता है जो हड्डी को मजबूत करता है, रिकेट्स को रोकता है।

दूध का उपयोग:

१– पेय पदार्थ के रूप में: दूध को अक्सर गर्म या ठंडा पेय के रूप में ही पिया जाता है।

२– अनाज के साथ: कई लोग पौष्टिक नाश्ता बनाने के लिए अनाज के ऊपर दूध डालते हैं।

३– कॉफी और चाय: मलाईदार और स्वाद बनाने के लिए कॉफी और चाय में दूध मिलाया जाता है।

४– स्मूदीः दूध स्मूदी बनाने, फलों, सब्जियों और पौष्टिक पेय के लिए अन्य सामग्री के साथ मिलाने का एक सामान्य आधार है।
५– डेजर्टः दूध का उपयोग कस्टर्ड, चावल का हलवा और चॉकलेट जैसी विभिन्न मिठाइयों की तैयारी में किया जाता है।
६ बेकिंग के लिए।
७– स्वादिष्ट व्यंजन बनाने में।
८– दूध उत्पादों (दही, पनीर, मक्खन आदि) के रूप में।
९– दूध के उपोत्पाद (मट्ठा आदि) के रूप में।
१०–शिशु पोषणः मां का दूध शिशुओं के लिए पोषण का सबसे अच्छा स्रोत है।

दूध का भंडारणः

१– दूध को सुरक्षित और ताजा रखने के लिए उसे ४०ह्थ (४ह्ब) से कम तापमान पर संग्रहित किया जाना चाहिए।
२– दूध को खराब होने और हानिकारक बैक्टीरिया से बचाने के लिए प्रशीतन (३५ह्थ से ४०ह्थ) भंडारण का सबसे अच्छा तरीका है।
३– दूध की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए इसे हमेशा एक सीलबंद कंटेनर में रखें।
४– दूध आसानी से बैक्टीरिया से संक्रमित हो जाता है इसलिए तारीख की मुहर जांच कर लें।
५– धूप से दूर रखें और ढक कर रखे।
६– तेज गंध वाले भोजन से दूर रखें।

दूध का प्रसंस्करणः

दूध के प्रसंस्करण में इसकी सुरक्षा, संरक्षण और नीचे दिए गए विभिन्न डेयरी उत्पादों में परिवर्तन सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न चरण शामिल हैंः
१– संग्रहः दूध को डेयरी फार्मों से एकत्र किया जाता है और प्रसंस्करण संयंत्रों तक पहुंचाया जाता है।
२– स्वागत और परीक्षणः आगमन पर, दूध का तापमान और दूषित पदार्थों के लिए परीक्षण किया जाता है।
३– स्पष्टीकरणः अपकेंद्रित्र या निस्पंदन जैसी प्रक्रियाओं के माध्यम से अशुद्धियों और मलबे को हटा दिया जाता है।
४– पाश्चुरीकरणः दूध में बैक्टीरिया को नष्ट करने के लिए पाश्चराइजेशन सबसे आम प्रक्रिया है। हानिकारक बैक्टीरिया को मारने और स्वजीवन को बढ़ाने के लिए दूध को ३० मिनट के लिए ६३ह्ब या १५ सेकंड के लिए ७२ह्ब तक गर्म किया जाता है।
५– समरूपीकरणः क्रीम के पृथक्करण को रोकने के लिए वसा के अणुओं को तोड़ दिया जाता है और पूरे दूध में समान रूप से वितरित किया जाता है।

६– मानकीकरणः दूध की वसा सामग्री को विशिष्ट उत्पादों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समायोजित किया जाता है

७– ठंडा करनाः दूध की ताजगी बनाए रखने के लिए उसे तेजी से ठंडा किया जाता है।

८– पैकेजिंगः प्रसंस्कृत दूध को विभिन्न कंटेनरों, जैसे कार्टन, बोतल या बैग में पैक किया जाता है।

९– गुणवत्ता नियंत्रणः सुरक्षा और गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए नमूनों का नियमित रूप से परीक्षण किया जाता है।

१०– भंडारण और वितरणः ताजगी बनाए रखने के लिए दूध को कम तापमान पर संग्रहित किया जाता है और फिर खुदरा विक्रेताओं या उपभोक्ताओं को वितरित किया जाता है।

दूध पर गर्मी का प्रभावः

- सूक्ष्मजीव को विनाश करता है।
- स्वाद और सुगंध बदल जाता है।
- प्रोटीन का विकृतीकरण हो जाता है।
- एंजाइम निष्क्रिय हो जाता है।
- माइक्रोबियल भार में कमी आता है।
- रोगजनकों का विनाश करता है।
- वसा का पृथक्करण हो सकता है।
- बनावट बदल जाती है।

दूध के प्रकार या विभिन्न रूपः

कच्चा दूधः अपाश्चुरीकृत दूध।

संपूर्ण दूधः ऐसा दूध जिसमें से कोई भी घटक न निकाला जाए।

वसा=३–२५%

एसएनएफ=८%

स्किम्ड दूधः लगभग सारी वसा हटा दी जाती है। कम कैलोरी और कम वसा वाला आहार माना जाता है।

'वसा=ढ ०–५ %

'एसएनएफ=८–७%

फोर्टिफाइड (सुपर) दूध– इसमें अतिरिक्त विटामिन और खनिज मिलाया कर बनाया जाता है।

सूखा दूधः निर्जलित दूध जिसमें से ९५% पानी निकाल दिया जाता है। इसे लंबे समय तक सीलबंद कंटेनर में रखा जा सकता है।

वाष्पीकृत दूधः निर्जलित दूध जिसमें से ६०% पानी निकाल दिया जाता है, और एक डिब्बे में

सील कर दिया जाता है। इसे एक वर्ष से अधिक समय तक रखा जाता है और मिठाई पकाने में उपयोग किया जाता है।

गाढ़ा दूधः थोड़ा पानी निकालकर, चीनी मिलाकर, जीवाणुरहित करके डिब्बे में बंद करके रखा जाता है। इसे मिठाई पकाने में उपयोग किया जाता है।

फ्लेवर्ड मिल्कः फ्लेवर्ड मिल्क एक मीठा पेय है जिसमें दूध, चीनी, रंग और कृत्रिम स्वाद मिलाया जाता है।

निष्कर्ष : जीवन को बनाए रखने और अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए आवश्यक प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, सभी ज्ञात विटामिन और विभिन्न खनिजों की समृद्ध सामग्री के कारण दूध एक संपूर्ण भोजन है।

14 दुग्ध उत्पाद एवं उपोत्पाद

गार्गी महापात्रा, सुषमा कुमारी एवं रोहित कुमार जयसवाल
पशुधन उत्पाद प्रौद्योगिकी विभाग
बिहार वेटरनरी कालेज, बिहार एनिमल साइंसेस यूनिवर्सिटी, पटना

दूध के उत्पादः

दूध उत्पाद दूध से बने प्राथमिक उत्पाद हैं, जो न केवल दूध के स्वजीवन को बढ़ाते हैं बल्कि इसके स्वाद, बनावट और पाक संबंधी संभावनाओं का वर्गीकरण भी प्रदान करते हैं। ये न केवल स्वादिष्ट होते हैं बल्कि संतुलित आहार के लिए आवश्यक पोषक तत्व भी प्रदान करते हैं। इसकी बहुमुखी पाक कला और विभिन्न सांस्कृतिक व्यंजनों में इसकी भूमिका उन्हें दुनिया भर के घरों में प्रमुख बनाती है। कुछ सामान्य दूध उत्पाद नीचे दिए गए हैं:

१ : सांद्रित संपूर्ण दूध उत्पादः

- खीर / बासुंदी : खीर एक भारतीय व्यंजन है जो कराही में सीधे आग पर चीनी और आमतौर पर चावल या सूजी के साथ पूरे दूध के आंशिक निर्जलीकरण द्वारा तैयार की जाती है। इसमें नमी= ६७.०२%, वसा =७.८३%, प्रोटीन= ६.३४%, लैक्टोज=८.४५%, ऐश=१.४१% और चीनी (अतिरिक्त) ८.६५% होता है। खीर की औसत शेल्फ लाइफ (३७f+^{0}c) पर २ से ३ दिन और (४+१^{0}c) पर १० से १५ दिन होता है।
- खावा/मावा : दूध को लगातार गर्म करके तैयार किया गया आंशिक रूप से निर्जलित संपूर्ण
  दूध उत्पाद है।

खाओ का वर्गीकरण इस प्रकार हैः

पिंड़ी : पिंडी में वसा २१–२६% और नमी ३१–३३% होता है। इससे बर्फी, पेड़ा आदि तैयार किया जाता है।

धाप : इसमें वसा २०–२३% और नमी ३७–४४% होता है और इससे गुलाब जामुन, पन्तुआ मिठाई आदि तैयार किया जाता है।

दानेदारः इसमें वसा २०–२५% और नमी ३५–४०% होता है और इससे कलाकंद, लौकी की बर्फी आदि बनाया जाता है। खोआ को कम तापमान (५–१०^{0}c) पर स्टोर किया जाता है।

• **खुरचन** : खुरचन एक पॉपुलर भारतीय मिठाई है, जिसे आमतौर पर दूध, चीनी और घी के साथ बनाया जाता है। यह मिठाई दूध को उबालकर जलाये बिना तैयार की जाती है जिससे एक स्वादिष्ट मिठाई बनती है। खुरचन का खास फीचर यह होता है कि इसमें दूध की मलाई को बहुत ही सुंदर रूप में जमाया जाता है, जिससे इसका नाम खुरचन हुआ है, क्योंकि खुरचन का मतलब

छिलका होता है। इसका रासायनिक संरचनाइस प्रकार हैः नमी २७.६%, वसा २३.६%, प्रोटीन १५.४%, लैक्टोज १४.६%, चीनी १५.२%, ऐश ३% और लोहा (मिलीग्राम) २५.३% होता है।

• **रबड़ीः** यह विशेष रूप से तैयार किया गया सांद्रित और मीठा संपूर्ण दूध उत्पाद है, जिसमें थक्के वाली क्रीम की कई परतें होती हैं।रबड़ी की रासायनिक संरचनाः नमी ३०%, वसा २०%, प्रोटीन १०%, लैक्टोज १७% ऐश ३%, और चीनी २०% होता है।चूंकि रबड़ी में दूध के सभी ठोस पदार्थ लगभग पांच गुना मात्रा में होते हैं, साथ ही अतिरिक्त चीनी भी होती है, इसलिए इसका भोजन और पोषक मूल्य बहुत अधिक होता है।इसका उपयोग प्रत्यक्ष उपभोग के लिए किया जाता है।

२ः जमा हुआ दूध उत्पादः

• दहीः दही एक प्रकार की दूध से बनाई गई डेयरी उत्पाद है, जिसमें दूध को लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया के कार्यात्मक फर्मेंटेशन के माध्यम से बदल दिया जाता है। इसकी पहचान उसके क्रीमी और मीठे स्वाद से होती है और यह स्वास्थ्य के लिए भी फायदेमंद होता है। दही की रासायनिक संरचना में निम्नलिखित मुख्य घटक शामिल हैंः पानी =८५–८८%, वसा=५–८%, प्रोटीन=३.२–३.४%, लैक्टोज=४.६–५.२%, ऐश=०.७०–०.७२%, लैक्टिक एसिड=०.५–०.११ %।

पानीः दही प्रमुख रूप से पानी से बनी होती है, जो इसकी आधिकारिक सामग्री का बड़ा हिस्सा बनाता है।

प्रोटीनः दही में प्रोटीन प्रमुख रूप से केसिन और व्ही प्रोटीन होता है, जो इसके पोषण मूल्य के लिए महत्वपूर्ण हैं।

कार्बोहाइड्रेट्सः दही में कार्बोहाइड्रेट्स प्रमुख रूप से लैकटोस होते हैं, जो प्राकृतिक मिठास प्रदान करता है ।

खनिजः दही जैसे महत्वपूर्ण खनिज या लघु धातुएं, जैसे कैल्शियम, पोटैशियम, फॉस्फोरस, और मैग्नीशियम का स्रोत होती है।

विटामिनः दही में विटामिन बी–१२, राइबोफ्लेविन (विटामिन बी–२), और यदि यह संशोधित किया जाता है तो विटामिन–डी भी हो सकता है।

प्रोबायोटिक्सः दही को अपने स्वास्थ्य के लिए अच्छा माना जाता है, क्योंकि यह लाइव फायदेमंद बैक्टीरिया (लैक्टोबैसिलस और स्ट्रेपटोकोकस जीवो) शामिल होता है।

दही का प्रकार :

• **सादा दहीः** सादा दही या नॉर्मल दही, इसमें किसी प्रकार की मिलावट या स्वाद नहीं होती है।

• **मिस्टी दहीः** मिस्ती दही में शर्करा या चीनी मिलाई जाती है, जिससे यह मीठा होता है। यह आमतौर पर डेसर्ट के रूप में खाया जाता है।

• **फलों वाली दहीः** इसमें फलों का स्वाद जैसे कि आम, स्ट्रॉबेरी, या अन्य फलों का रस मिलाया जाता है, जिससे दही का स्वाद विशेष होता है।

•**ग्रीक योगर्टः** ग्रीक दही, या ग्रीक योगर्ट, अधिक गाढ़ा होता है और पानी को निकाल दिया जाता है, जिससे यह क्रीमी होता है।

• **दरबी दहीः** दरबी दही एक विशेष प्रकार की दही है जो पाकिस्तान और भारत के कुछ क्षेत्रों में प्रसिद्ध है, जिसमें दूध को धीमी आंच पर जमाया जाता है ।

• **प्रोबायोटिक्सः** कुछ दही प्रोबायोटिक्स होती हैं, जिसमें लाइव बेनिफिशियल बैक्टीरिया होते हैं, जो हमारे आंतों के स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद होते हैं। दही को ५–१०^{0}C पर फ्रिज में पाँच से सात दिन तक सुरक्षित रख सकते हैं।

• **श्रीखंडः** श्रीखंड एक अर्ध–नरम, मीठा–खट्टा, संपूर्ण दूध उत्पाद है जो दही से तैयार किया जाता है। मट्ठा निकालने के लिए दही को आंशिक रूप से एक कपड़े के माध्यम से छान लिया जाता है और इस प्रकार एक ठोस द्रव्यमान बनता है जिसे चक्र कहा जाता है (श्रीखंड के मूल घटक), श्रीखंड प्राप्त करने के लिए इस चक्र में आवश्यक मात्रा में चीनी आदि मिलाया जाता है। श्रीखंड का रासायनिक संरचनाः नमी=६.५%, वसा=७.४%, प्रोटीन=७.७% लैक्टोज=१५.६%, ऐश=०.८% चीनी=६२.६%, लैक्टिक एसिड=१% । श्रीखंड को मिठाई के रूप में खाया जा सकता है, जिसमें दही,, चीनी, और विभिन्न मसालों का मिश्रण होता है।

श्रीखंड को परांठे के साथ भी परोसा जा सकता है। यह फलों के साथ भी खाया जा सकता है, जैसे कि आम आदि।

• **पनीरः** जो दूध से बनता है और भारतीय रसोईघरों में बड़े पसंदीदा स्वादिष्ट खाने का हिस्सा है।पनीर बनाने के लिए बर्तन में दूध को उबालने तक गरम करें, जब दूध उबलने लगे, तो धीरे–धीरे निम्बू का रस डाले, इसके बाद दूध के पानी और पनीर को अलग करने के लिए धीरे–धीरे पनीर को छलनी के द्वारा अलग करें, अब पनीर को साफ पानी में धो लें और उसे छलने के बीच में कुछ भारी वस्त्र या थाली पर रख दें, ताकि बचा हुआ पानी बाहर निकल जाए। अब पनीर को अपनी पसंदीदा तरीके से काट लें और इस्तेमाल करे।आप इस पनीर को विभिन्न स्वादिष्ट व्यंजनों में शामिल कर सकते हैं, जैसे कि पनीर मसाला, पनीर टिक्का, या पनीर परांठा।

रासायनिक संरचना

दूध	नमी	पूर्णतः ठोस	वसा	प्रोटीन
गाय	७१.२%	२८.८%	१३.५%	१८.२०%
भैंस	७१.१%	८.६%	१३.१%	१८.२०%

•**छेना :** छेना एक ताजा, अनपक्व भारतीय पनीर है जिसे दूध को फटने और वसा को अलग करने के द्वारा बनाया जाता है। यह विशेष रूप से ओडिशा और पश्चिम बंगाल के राज्य में प्रसिद्ध है और विभिन्न भारतीय मिठाइयों और मिष्ठानों के मुख्य घटक में से एक है। छेना पनीर के समान होता

है, लेकिन इसकी थोड़ी अलग बनावट होती है और इसका उपयोग आमतौर पर रसगुल्ला,, छेना पोड़ा और अन्य विभिन्न डिशों को बनाने के लिए किया जाता है। छेना की रासायनिक संरचना (%) इस प्रकार है:

दूध	नमी	वसा	प्रोटीन	लैक्टोज	ऐश
गाय	५३.४	२४.८	१७.४	२.१	२.१
भैंस	५१.६	२६.६	१४.४	२.३	२.०

चूंकि छेना में वसा और प्रोटीन की मात्रा काफी अधिक होती है, इसमें कुछ खनिज, विशेष रूप से कैल्शियम और फास्फोरस भी होते हैं,,इसलिए इसका भोजन और पोषक मूल्य काफी अधिक होता है। यह वसा में घुलनशील विटामिन ए और डी का भी अच्छा स्रोत है। उच्च प्रोटीन और कम चीनी सामग्री के कारण, मधुमेह रोगियों के लिए छेना अत्यधिक अनुशंसित है ।

दूध उपोत्पादः

दूध उपोत्पाद दूध के प्रसंस्करण से प्राप्त द्वितीयक उत्पाद हैं। डेयरी उत्पादों को मुख्य उत्पाद के निर्माण के दौरान उत्पादित वाणिज्यिक मूल्य के उत्पाद के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। दूध के महत्वपूर्ण उप–उत्पाद नीचे दिए गए हैं:

दुग्ध उत्पाद	दुग्ध उपोत्पाद
क्रीम	स्किम्ड दूध
मक्खन	छाछ
पनीर	मट्ठा
कैसिइन	मट्ठा
घी	लस्सी
छेना	मट्ठा

• **स्किम दूध** : एक प्रकार का दूध होता है जिसमें उसके वसा को निकाल दिया जाता है । सामान्य दूध में फैट होता है, जबकि स्किम मिल्क में फैट को हटाकर उसकी मात्रा कम की जाती है। स्किम मिल्क को अक्सर पौष्टिक और कम कैलोरी वाला विकल्प माना जाता है और यह वजन नियंत्रण और स्वस्थ आहार के लिए उपयोगी होता है।स्किम मिल्क को आमतौर पर ठंडे स्थान पर रखा जाता है, जैसे कि फ्रिज में, जिससे इसका स्वाद और गुणवत्ता बना रहता है।

रासायनिक संरचना :

पानी=६०.६% वसा=०.१%, प्रोटीन=३.६%, लैक्टोज=५.०%, और ऐश=०.७%।

• **बटरमिल्क :** एक पौष्टिक उपोत्पाद होता है जिसे दूध की फरमेंटेशन प्रक्रिया के माध्यम से बनाया जाता है। इसमें कम वसा होता है और यह अमल्दार स्वाद वाला होता है, जिसके कारण यह गर्मियों में ठंडा करने के लिए आमतौर पर उपयोग होता है। बटरमिल्क दूध की फरमेंटेशन के दौरान बचने वाले पानी को निकालकर बनाया जाता है और इसमें प्रोटीन, विटामिन, और खनिज होते हैं जो पोषण के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। बटरमिल्क भारतीय खाद्य पदार्थों का महत्वपूर्ण हिस्सा है और इसका सेवन आमतौर पर भोजन के साथ किया जाता है। यह भारतीय खाद्य में मुख्य रूप से उपयोग होता है और खासकर गर्मियों में शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए फायदेमंद होता है।

रासायनिक संरचनाः

पानी=६१.६%, वसा=०.४%, प्रोटीन=३.४%, लैक्टोज=४.५%, और ,ऐश=०.७%

• **लस्सी :** एक पॉपुलर भारतीय ड्रिंक है जिसे दूध की फरमेंटेशन प्रक्रिया के माध्यम से बनाया जाता है। यह एक स्वादिष्ट और पौष्टिक ड्रिंक होती है जो आमतौर पर गर्मियों में पी जाती है।

रासायनिक संरचना :

पानी=६६.२% वसा ०.८%,प्रोटीन=१.४%, लैक्टोज=१.२% और ऐश=०.४%।

• **व्हे :** जिसे हिंदी में छाछ या वसी भी कहा जाता है, दूध से निकलने वाला एक महत्वपूर्ण दूध उपोत्पाद होता है। यह उस भाग को कहते हैं जो दूध को बनाने के प्रक्रिया के दौरान जब पनीर या दही बनाने के लिए दूध को झूला जाता है, तो उसके बाद बचने वाले पानी का नाम होता है। व्हे कुछ प्रोटीन, विटामिन, और खनिजों का अच्छा स्रोत होता है और खाद्य उत्पादों में उपयोग होता है, जैसे कि प्रोटीन शेक, बेकरी उत्पाद में उपयोग होता है । यह भी आहार और पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

• **मट्ठा :** एक प्रकार की हिंदी छाछ होती है, जिसे दूध की प्राकृतिक फरमेंटेशन प्रक्रिया के माध्यम से बनाया जाता है। इसे छाछ, छास, या बट्टी भी कहा जाता है। मट्ठा को बनाने के लिए दूध को धीरे–धीरे एक खास प्रक्रिया के माध्यम से फरमेंट किया जाता है। जिससे यह अपने खास स्वाद और गुणवत्ता प्राप्त करता है। मट्ठा का स्वाद अमल्दार होता है और इसे आमतौर पर भारतीय भोजन में एक मिल्क ड्रिंक के रूप में परोसा जाता है। यह पोषक तत्वों से भरपूर होता है।

• **घी की बची हुई अवशेष :**

घी का बचा हुआ भाग, जिसे घी की छूट या घी का सिर भी कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण घरेलू रसायन है। यह घी बनाने के प्रक्रिया के दौरान उत्पन्न होता है और घी का एक

महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। यह बचा हुआ घी, भारतीय खाने की पद्धतियों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और विभिन्न घरो में उपयोग होता है।इसमें विटामिन–डी विटामिन–ई और अन्य पोषक तत्व होते हैं, जो हमारे स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद होते हैं।

रासायनिक संरचना :

पानी=६.७%, वसा=६१.४%, प्रोटीन=२४.८% और ऐश=४.१%।

• **छेना व्हेय :** एक पौष्टिक तरल पदार्थ होता है जो छेना नामक दूध के उपादान से बनाया जाता है । छाना या छेना व्हेय को बनाने के लिए, दूध को उबालकर करके तैयार किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप छाना बनता है और बचे हुए तरल अंश को छाछ या व्हेय कहा जाता है। छाना या छेना व्हेय खाद्य उत्पादों, मिठाइयों, और विभिन्न व्यंजनों के तैयारी में उपयोग होता है और इसके मध्यम से विभिन्न प्रकार की खास खाद्य वस्तुएँ बनती हैं। यह एक उच्च पोषण स्रोत भी होता है और भारतीय खाद्य में पसंद किया जाता है।

रासायनिक संरचना :

पानी=६६.६%, वसा=०.५%, प्रोटीन=०.४% लैक्टोज=५.१% और ऐश=०.४%।

• **ऐसिड केसीन व्हेय :** केसीन व्हेय में पौष्टिकता के साथ अच्छे प्रकार के प्रोटीन, विटामिन, और खनिज होते हैं। यह व्हेय भारतीय खाद्य व्यवसाय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और खासकर खाद्य और बेकरी के उत्पादों में प्रयुक्त होता है। इसका उपयोग विभिन्न खाद्य व्यंजनों में प्रोटीन के स्रोत के रूप में किया जाता है, और यह उच्च पोषण विभाग के लिए महत्वपूर्ण होता है।

रासायनिक संरचना :

पानी=६३.१%, वसा=०.१% प्रोटीन =१.०%, लैक्टोज=५.१%,और ऐश=०.७%।

निष्कर्ष : दूध और इसके उप–उत्पाद आहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और फायदेमंद होते हैं। ये उत्पाद न केवल स्वादिष्ट हैं, बल्कि पोषण से भरपूर और शरीर के लिए मूल्यवान भी है। इसके अतिरिक्त, दूध के उप–उत्पाद जैसे, केसीन व्हेय, छाछ और लस्सी भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, खासकर भारतीय व्यंजनों में ये उप–उत्पाद स्वास्थ्य और भोजन में उपयोग किए जाते हैं और हमारे जीवन में महत्वपूर्ण हैं।

15 दुग्ध प्रबंधन

अनुराधा कुमारी[1*], नीरज कुमार सिंह[2] एवं अनुपमा रानी[3]

[1, 3*]सहायक प्रोफेसर, गव्य रसायन विभाग, संजय गाँधी गव्य प्रौद्योगिकी संस्थान,
बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

[2]विभागाध्यक्ष, पशु चिकित्सा जैव रसायन, को.वा.स., किशनगंज,
बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

परिचय

दुग्ध प्रबंधन (Dairy Management) एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जो दूध उत्पादन से लेकर उसके संग्रहण, प्रसंस्करण, वितरण और गुणवत्ता बनाए रखने तक की संपूर्ण प्रक्रिया को सम्मिलित करती है। इसमें कई महत्वपूर्ण चरण और तकनीकें शामिल होती हैं ताकि दूध का उत्पादन और वितरण कुशलतापूर्वक और सुरक्षित तरीके से हो सके। यहाँ कुछ प्रमुख बिंदु दिए गए हैं:

1. दूध उत्पादन प्रबंधन (Milk Production Management)

दूध उत्पादन प्रबंधन के लिए मुख्य रूप से ध्यान रखने वाली बातें निम्नलिखित है।

स्वस्थ पशु पालन: उच्च गुणवत्ता वाला दूध उत्पादन करने के लिए स्वस्थ और संतुलित आहार, स्वच्छ पानी, और उचित स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करना आवश्यक है।

साफ–सफाई और हाइजीन: दूध उत्पादन के दौरान पशुओं की साफ–सफाई, दूध दोहन के उपकरणों की सफाई, और दूध दोहन करने वाले व्यक्तियों का हाइजीन बनाए रखना अनिवार्य है।

2. दूध संग्रहण और परिवहन (Milk Collection and Transportation)

दूध का त्वरित संग्रहण: दूध को तुरंत ठंडा करना जरूरी है ताकि उसमें बैक्टीरिया न पनपें। इसे 4°C के नीचे संग्रहित किया जाता है।

उचित परिवहन व्यवस्था: दूध को संग्रहण स्थल से प्रसंस्करण केंद्र तक पहुंचाने के लिए सही तापमान पर रखने वाले वाहनों का उपयोग किया जाता है ताकि दूध खराब न हो।

3. दूध प्रसंस्करण (Milk Processing)

पाश्चरीकरण (Pasteurization): दूध को एक निश्चित तापमान पर गरम करके उसमें मौजूद हानिकारक बैक्टीरिया को नष्ट किया जाता है, जिससे दूध सुरक्षित होता है।

होमोजेनाइजेशन (Homogenization): दूध में फैट के कणों को समान रूप से वितरित किया

जाता है ताकि उसकी संरचना और स्वाद समान रहे।

पैकेजिंग और लेबलिंग: दूध को सुरक्षित तरीके से पैकेज किया जाता है और उसकी सही जानकारी जैसे उत्पाद की तिथि, समाप्ति तिथि और पोषण संबंधी जानकारी दी जाती है।

4. गुणवत्ता नियंत्रण (Quality Control)

दूध की जांच: दूध की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए इसे विभिन्न स्तरों पर जांचा जाता है, जैसे कि इसमें मिलावट, बैक्टीरिया, और अन्य हानिकारक तत्वों की जांच।

मानक और प्रमाणन: दूध और दूध उत्पादों की गुणवत्ता अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय मानकों के अनुसार जांची जाती है ताकि उपभोक्ताओं को स्वस्थ और स्वच्छ उत्पाद मिले।

5. दुग्ध उत्पाद विपणन (Dairy Product Marketing)

उत्पाद विविधता: दूध से दही, मक्खन, पनीर, घी, क्रीम आदि विभिन्न उत्पाद बनाए जाते हैं, जिनकी मांग अलग–अलग होती है। इन उत्पादों की सही कीमत पर बाजार में आपूर्ति करना आवश्यक है।

उपभोक्ता तक पहुंच: दूध और दूध उत्पादों को उपभोक्ताओं तक ताजगी और गुणवत्ता बनाए रखते हुए सही समय पर पहुंचाना महत्वपूर्ण होता है।

6. पशु स्वास्थ्य और प्रजनन प्रबंधन (Animal Health and Reproduction Management)

नियमित स्वास्थ्य जांच: पशुओं की नियमित स्वास्थ्य जांच, टीकाकरण और संतुलित आहार उनकी उत्पादकता और दूध की गुणवत्ता बनाए रखने में सहायक होते हैं।

प्रजनन प्रबंधन: बेहतर नस्ल के पशुओं का प्रजनन और सही समय पर उनके प्रजनन की प्रक्रिया दूध उत्पादन बढ़ाने में सहायक होती है।

7. कचरे का प्रबंधन (Waste Management)

मल और गोबर का प्रबंधन: पशुओं के गोबर और अन्य कचरे को उचित तरीके से प्रबंधित करना ताकि पर्यावरण को नुकसान न पहुंचे।

बायोगैस उत्पादन: गोबर से बायोगैस बनाकर ऊर्जा का उपयोग करना एक अच्छा प्रबंधन तरीका है।

8. आर्थिक प्रबंधन (Financial Management)

लागत और लाभ का संतुलन: दूध उत्पादन, संग्रहण, और प्रसंस्करण में आने वाले खर्च और उससे होने वाले लाभ का सही संतुलन बनाए रखना आवश्यक है।

सरकारी योजनाएं और सहायता: सरकार द्वारा दुग्ध उत्पादन के लिए दी जाने वाली सब्सिडी, ऋण, और योजनाओं का सही उपयोग किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

दुग्ध प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य दूध की उच्च गुणवत्ता सुनिश्चित करना और उसे सुरक्षित तरीके से उपभोक्ताओं तक पहुँचाना है। इसके लिए आधुनिक तकनीक, सही प्रबंधन और स्वच्छता मानकों का पालन करना जरूरी होता है। उचित दुग्ध प्रबंधन कर हम बिना किसी नुकसान के दूध का उचित उपयोग कर सकते है। इसके लिए दूध एवं दूध उताप्दों से जुड़े सभी पहलूवो जैसे दूध उत्पादन प्रबंधन, दूध संग्रहण और परिवहन, दूध प्रसंस्करणए गुणवत्ता नियंत्रण, दुग्ध उत्पाद विपणन, पशु स्वास्थ्य और प्रजनन प्रबंधन, कचरे का प्रबंधनए आर्थिक प्रबंधन का उचित ज्ञान होना अति आवश्यक है।

16 बेहतर लाभ प्राप्ति के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली एवं फसल– सह– पशुधन की खेती (आईएफएस)

संजीव कुमार, शिवानी, अभिषेक कुमार एवं अनुप दास

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् का पूर्वी शोध परिसर, पटना–800014

विशिष्ट समूह के मांग की पूर्ति हेतु सटीक तकनीकों को विकसित तथा हस्तातंरित करने के क्रम में कृषक–सहभागिता, सुनियोजित अनुसंधान तथा प्रसार के प्रयास भारत में जोर पकड़ रहे हैं। हाल के वर्षों में सस्य प्रणाली/कृषि प्रणाली पर केन्द्रित कई कार्यक्रम आरम्भ किये गए हैं। इन कार्यक्रमों में कृषि प्रणाली अनुसंधान से जुड़ी रणनीति की वांछनीय विशेषताओं कों, कृषि अनुसंधान की मुख्य धारा में मिलाने के प्रयास किये गए हैं । ताकि प्रासंगिक विशिष्ट समूह केंद्रित तथा स्थान विशिष्ट तकनीकों का विकास किया जा सके। यद्यपि भारतीय परिपेक्ष्य में कृषि प्रणाली अनुसंधान (एफ. एस. आर.) के कार्यान्वयन का वास्तविक अनुभव काफी सीमित ही रहा है। भारत में कृषि प्रणाली अनुसंधान प्रबंध अकादमी (एन ए.ए.आर.एम.) में आयोजित एक अंतर्राष्ट्रीय कार्यशाला में चर्चा की गई तथा इसमें कई उपयोगी तथा कार्यान्वयन योग्य प्रस्ताव सामने आए।

समेकित या समन्वित कृषि पद्धति ऐसी पद्धति है जो एक किसान के पास उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों (भूमि, जल, श्रम, उर्जा एवं पूंजी) का वास्तविक आकलन करती है एवं उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग स्थानीय वातावरण, मिट्टी, उर्जा, जल की उपलब्धता इत्यादि एवं किसान की आर्थिक एवं सामाजिक पहलुओं को ध्यान में रखकर करने का अवसर प्रदान करती है (कालिसान, 1979) इस प्रणाली में यह भी ध्यान रखा जाता है कि एक घटक का अवशिष्ट दूसरे घटक के लिए उपयोगी हो ताकि उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग कर ज्यादा से ज्यादा आमदनी प्राप्त की जा सके। उदाहरणतः धान के पुआल का उपयोग मशरुम उत्पादन में किया जा सकता है, व मशरुम उत्पादन के बाद पुनः इसका उपयोग धान में किया सकता है। इस तरह से एक चक्र का निर्माण होता है जिसे पोषकद्रव्य चक्र कहते हैं। जिससे कि चक्र में शामिल प्रत्येक घटकों का अधिकाधिक उपयोग किया जा सकता है।

नयी उन्नत कृषि तकनीकों की सार्थकता तभी है जब कृषक समुदाय उन्हे अपनायें, अन्यथा वे तकनीकी रूप से सबल होते हुए भी सीमित मूल्यों की रह जाती हैं। परम्परागत

अनुसंधान तथा प्रसार के प्रयासों से विकसित एवं हस्तांतरित नई कृषि तकनीके बड़े पैमाने पर भिन्नता रखने वाले कृषि जलवायु तथा सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के अन्तर्गत खेती करने वाले कृषकों में एक समान रूप से अपनायी नहीं जाती हैं । यदि मूलभूत तौर पर कृषि जलवायु तथा सामाजिक – आर्थिक परिस्थितियों पर जिसमें कृषक खेती करते हैं, की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाए, तो अनुसंधान केन्द्रों पर विकसित एवं हस्तांतरित तकनीकों को किसानों की आवयश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुरूप उपयुक्त नहीं पाया जा सकता। सीमित संसाधनों एवं कम अनुकूल प्राकृतिक वातावरण में खेती करने वाले छोटे किसान प्रायः कई कारणों से नई तकनीकों को नहीं अपनाते हैं। जिनमें से कुछ मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

1. नई तकनीकों के विषय में जागरूकता का अभाव (निरक्षरता / उपेक्षा)
2. अप्रभावी प्रसार सेवाएं
3. नई तकनीकें किस परिस्थिति में विकसित की गई है उसे प्रस्तुत न करना
4. आवश्यककृषि सामग्रियों पर खच करने के लिए संसाधनों का आभाव
5. समय पर खाद, बीज इत्यादि का उपलब्ध नही हो पाना

एक और कारण यह भी कभी – कभी सुनने को मिलता है कि अनुशंसित तकनीके किसानों एवं उनके वातावरण के लिए ही उपयुक्त नहीं है (चैम्बर्स एवं गिल्ड्यल 1985)। सामान्यतः किसान ऐसी तकनीके ढूंढते हैं जिससे उनकी आमदनी में बढ़ोतरी हो और साथ ही साथ जिनके जोखिम का दायरा उनकी परिस्थितियों एवं प्रबंधन के अंर्तगत सीमित हो। 'हरित क्रांति' मुख्यतः समृद्ध किसानों तथा संसाधन सम्पन्न क्षेत्रों, जिनमें अधिक कृषि उत्पादन की स्पष्टतया अधिक क्षमता थी, तक ही सीमित रह गई। परम्परागत तकनीक–विकास तथा हस्तांतरण मॉडल जो विकासशील देशों में अपनाये गए है उन्हें अधिकांश किसानों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ पाया गया है। उत्पाद आधारित पारम्परिक कृषि अनुसंधान में कृषि प्रणाली दृष्टिकोण का अभाव हैं। अनुसंधान केन्द्रों में चलाए जाने वाले कार्यक्रम ऐसी परिस्थिति में चलाये जाते हैं जो किसान के खेतों में नहीं पाये जाते तथा इनमें किसाानों की भागीदारी भी बहुत कम अथवा बिल्कुल नहीं के बराबर होती है। जटिल, विविधतापूर्ण तथा जोखिम भरी परिस्थितियों में खेती करने वाले छोटे संसाधनहीन किसानों की समस्याओं को हल करने के लिए परम्परागत, उत्पाद आधाारित अनुसंधान एवं प्रसार नीतियों की असफलता के फलस्वरूप एक अधिक वृहत, सुनियोजित, कृषक केन्द्रित तथा अनतरआयामी दृष्टिकोण का अर्विभाव हुआ जिसे कुषि अनुसंधान प्रणाली के नाम से जाना गया। इसका उद्देश्य कृषि प्रणलियों की स्पष्ट जानकारी के आधार पर उनके लिए उपयुक्त कृषि तकनीकों का विकास तथा प्रसार करना है।

किसी भी कृषि प्रणाली के दृष्टिकोण से शोध एवं प्रसार कार्य के प्रयास के विभिन्न उद्देश्य होते हैं । इसकी सीमा फार्मिंग सिस्टम (कृषि प्रणाली) के बारे में अधिक ज्ञान अर्जित करने से लेकर कृषि प्रणाली की विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं को हल करने तक है। यह समस्याओं का समाधान करने वाली भूमिका का सर्वोत्तम स्थान है क्योंकि इसका लक्ष्य किसानों के

लिए उपयुक्त कृषि तकनीकों के विकास और हस्तांतरण द्वारा कृषि प्रणाली की उत्पादकता को बढ़ाया जाना है। दुर्भाग्यवश कृषि प्रणाली अनुसंधान का अर्थ विभिन्न लोगेां के लिए भिन्न – भिन्न है (मेरिल–सैडंस, 1986) । जिसका उद्देश्य कृषि प्रणाली अनुसंधान की वृहद छतरी तले कई विधियों को अग्रसर करना है। इसके अतिरक्त इस वृहत शीर्ष के अधीन कुछ गतिविधियॉ आयोजित कर कई व्यक्ति एवं संस्थान कृषि प्रणाली अनुसंधान की विधियों/कार्यरीतियों पर अपनी मुहर लगाने के प्रयास में हैं। साइमडंस (1984) ने विभिन्न देशों एवं महाद्वीपों में अपनायी गई कृषि प्रणाली अनुसंधान की विविध रणनीतियों पर विस्तृत अध्ययन कर उन्हें निम्नलिखित श्रेणियों में बॉटा :

(i) **कृषि अनुसंधान प्रणालीः** सीधे शब्दों में इसके अर्न्तगत यह उस कृषि प्रणाली का अध्ययन करता है जो आज भी अस्तित्व में हैं। यह पूर्णतः शैक्षणिक गतिविधि है जिसके अन्तर्गत कृषि प्रणाली का विवरण, विश्लेषण एवं इसकी कार्यप्रणाली का गहराई से अध्ययन किया जाता है।

(ii) नवीन कृषि पणाली का विकासः प्रायः इस प्रकार के अनुसंधान, अनुसंधान केन्द्रों में चलाये जाते है तथा इसमें फसल, पशुधन एवं वृक्षों की प्रजातियों को एक क्षेत्र में समेकित किया जाता है। विभिन्न उद्यमों के बीच आपसी निर्भरता बनायी जाती है। इसमें नई कृषि पणाली का विकास कर जटिल तथा मौलिक परिवर्तनों की आशा की जाती है, न कि चरणबद्ध परिवर्तनों की।

(iii) कृषि प्रणाली स्वरूप के साथ प्रक्षेत्र अनुसंधानः यह एक समस्या आधारित अनुसंधान है जिसमें प्रयोगकर्ता की परिस्थितियों के आधार पर कृषि प्रणाली में परिवर्तनों को ढ़ालना चाहिए। देखा गया है कि एक ही विधि द्वारा केन्द्र एवं किसानों के खेत पर किये गए अनुसंधान का परिणाम कभी भी नहीं मिल पाता। दोनों में काफी अन्तर होता है। कृषि प्रणाली में क्रांतिकारी बदलाव की जगह चरणबद्ध बदलाव पर बल दिया जाता है। वर्तमान समय में अधिकांश कृषि प्रणाली अनुसंधान इसी श्रेणी में अच्छी तरह वर्णित किये जा सकते हैं जिसे विश्व के अन्य देशों में भी समर्थन मिल रहा है।

ध्यान देने योग्य समेकित कृषि प्रणाली के मुख्य बिन्दु :

1. यह पूरे कृषि फार्म का पूर्ण अध्ययन करती है तथा घटकों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में मदद करती है।
2. यह वस्तुतः कृषि क्षेत्र में पाई जाने वाली कठिनाइयों के हल तलाश पर आधारित कार्यक्रम होती है। यह विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाने वाली कठिनाइयों का अध्ययन कर उनपर शोध करने का अवसर देती है। फलतः इस तरह से विकसित तकनीक कृषकों में लोकप्रिय होती है।
3. यह विकसित तकनीक की स्थानीय विशेषता को दर्शाती है।
4. यह कृषि क्षेत्र में एकसमान कठिनाई वाले क्षेत्रों की पहचान कर उसके निवारण के लिए शोध का अवसर प्रदान करती है।
5. यह कृषकों की पूर्ण सहभागिता पर आधारित कार्यक्रम है अतः इससे विकसित तकनीक

किसानों द्वारा सहज ही अपनाई जाती है।

6. यह देशी तकनीकी ज्ञान को शोध–कार्यक्रम व तकनीक उत्पादन में महत्ता देकर समायोजन का अवसर प्रदान करती है।
7. यह कृषि के धरातल से उत्पन्न कठिनाइयों की पहचान एवं प्रचलित कृषि–प्रणाली का अध्ययन कर उनमें सुधार का अवसर प्रदान करती है।
8. चूँकि यह बहु–विषयक/बहु सामग्रिक है अतः एक ही समय में यह बहुत सी कठिनाइयों का समाधान करने में सक्षम है।
9. यह कृषक–फार्मों पर एवं कृषकों की सहभागिता पर आधारित शोध–कार्यक्रमों का समर्थन करती है।
10. यह लिंग भेद की पहचान करने में सक्षम है तथा कृषि में महिलाओं की सहभागिता का समर्थन करता है।
11. सह कृषि–प्रणाली में समायोजित धटकों का सीढ़ी–दर–सीढ़ी अध्ययन करता है।
12. यह एक गतिशील प्रणाली है जिसमें सुधार व विकास की निरन्तर अपेक्षाएं बरकरार रहती हैं।
13. सह नियम निर्धारक, वैज्ञानिकों, कृषकों के बीच अन्तः–निभर्रता का अध्ययन करती है।
14. यह कृषकों द्वारा अपनाई जाने वाली तकनीकों का सही रूप में विशलेषण करती है।
15. यह ऐसी तकनीक के विकास में समर्थन करती है जो पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित व कम खर्चीला हो एवं उत्पादन निरन्तरता बरकरार रखे।
16. यह शोध कार्यक्रम का आधार तैयार करने में मददगार है।

समेकित कृषि के विभिन्न घटकों का आपस में सहलग्नता

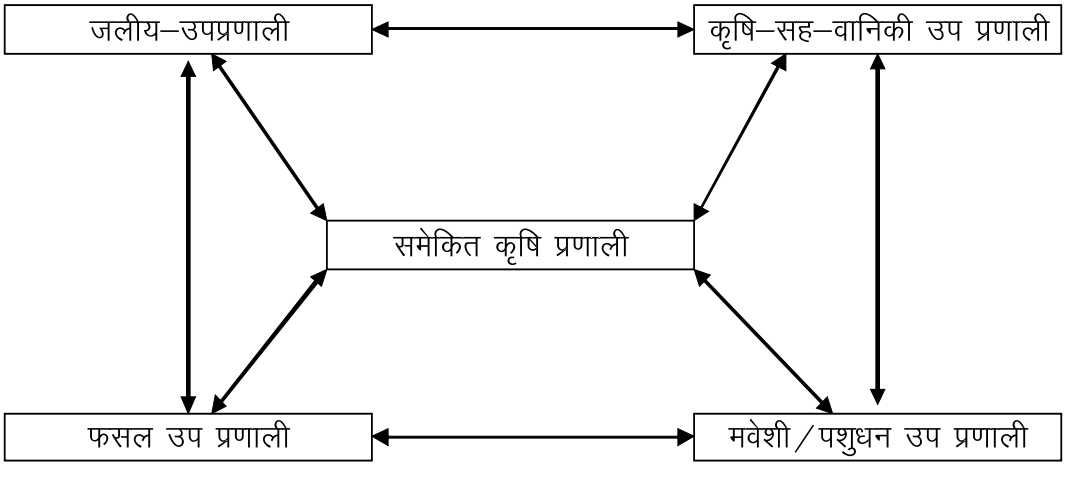

समेकित कृषि प्रणाली से फायदे

1. समेकित कृषि प्रणाली प्रति हेक्टेयर भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने का एक अवसर प्रदान

करता है। सीमित भूमि पर फसलों का विविधिकरण एवं कृषि के साथ अन्य घटकों का समावेश करने से प्रति ईकाई भूमि की उत्पादकता बढ़ती है।

2. समेकित कृषि प्रणाली में एक घटक के अवशिष्ट का उपयोग दूसरे घटक में निवेश के रुप में किया जाता है जिससे कि पोषक तत्वों का पुनः प्रयोग हो जाता है तथा इससे दूसरे पदार्थों पर हमारी निर्भरता कम हो जाती है एवं हमारे उत्पादन पर आनेवाले व्यय में भी कमी हो जाती है।
3. एक ही भूमि से ज्यादा से ज्यादा उत्पादन लेने के क्रम में कम से कम हमें 2.2 प्रतिशत अधिक रासायनिक खाद, कीटनाशक, खरपतवार नाशक आदि का इस्तेमाल करना पड़ता है जिससे मिट्टी प्रदूषित और बीमार हो जाती है। समेकित कृषि प्रणाली को अपनाने से घटक अवशिष्टों के बारम्बार उपयोग से हमारी मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा स्वतः ही बढ़ जाती है जिसके फलस्वरुप मिट्टी से लम्बे समय तक अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है।
4. समेकित कृषि में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिजलवण व विटामिन आदि पोषक तत्वों का उत्पादन एक ही भूमि पर हो जाता है ताकि यह कृषक परिवार के कुपोषण आदि बीमारियों से निदान पाने में लाभकारी हो सके।

5. आधुनिक कृषि प्रणाली में रासायनिक खादों, कीटनाशकों आदि का अन्धाधुन्ध प्रयोग हो रहा है, परिणामतः मिट्टी व पर्यावरण प्रदूषित हो रहे हैं। समेकित कृषि प्रणाली में एक घटक का अविशष्ट दूसरे घटक द्वारा उपयोग में लिया जाता है जिससे रासायनिक खादों एवं अन्य रासायनिक पदार्थों पर हमारी निर्भरता कम हो जाती है तथा भूमि व पर्यावरण का संरक्षण लम्बे समय तक होता रहता है।
6. परम्परागत कृषि द्वारा अनाज के पकने व कटने के समय ही आमदनी होती है जबकि समेकित कृषि के विभिन्न घटकों को कृषि के साथ शामिल करने से पूरे वर्ष आमदनी की निरन्तरता बरकरार रहती है। ये घटक दुग्ध–उत्पादन, कुक्कुट पालन, मधुमक्खी पालन, खुंभ उत्पादन, फल–सब्जी उत्पादन, रेशम उत्पादन, लाह उत्पादन, मत्स्य उत्पादन आदि हो सकते हैं।
7. धनाभाव के कारण प्रायः छोटे और सीमान्त किसान नवीन तकनीकों के उपयोग से वंचित रहते हैं। समेकित कृषि प्रणाली में विभिन्न घटकों द्वारा वर्ष भर आय प्राप्त होती है अतः छोटे और सीमान्त किसान भी धीरे–धीरे नई तकनीकों को अपनाने में सक्षम हो जाते हैं।
8. यह अनुमान लगाया जाता है कि वर्ष 2030 तक ऊर्जा की कमी होना निश्चित है अतः उर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों के उत्पादन एवं उपयोग का ज्ञान 2–3 दशक के अन्दर हो जाना चाहिए। समेकित कृषि में विभिन्न अपशिष्टों द्वारा बायोगैस का उत्पादन संभव है जो ऊर्जा का एक ठोस वैकल्पिक स्त्रोत है। हालांकि यह पूर्ण रुप से फॉसिल उर्जा की कमी को पूरा करने में सक्षम नहीं पर कुछ हद तक यह वैकल्पिक ऊर्जा देने में सक्षम है।
9. चूँकि समेकित कृषि में सम्पूर्ण भूमि का समुचित उपयोग किया जाता है जैसे – खेत की मेड़ों, नालियों, तालाब के घेराबंदी वाले क्षेत्रों में भी सब्जी, फल, फूल आदि लगाये जाते हैं तथा चारा उत्पादन समेकित कृषि का एक मुख्य अंश है; अतः इस प्रणाली में साल भर चारा फसल की

उत्पादन की व्यवस्था होती है ताकि पशुओं को ताजा एवं हरा चारा आसानी से उपलब्ध हो जाए।

10. वर्ष 2020 तक जलावन की लकड़ी की मांग करीब 400 लाख घन मीटर हो जायेगी। वर्त्तमान में हमारी उत्पादकता केवल 20 लाख घन मीटर ही है। इमारती लकड़ियों की मांग भी करीब 64.4 लाख घन मीटर हो जाएगी जबकि वर्त्तमान में इसकी उत्पादकता केवल 11 लाख घन मीटर ही है। साफ जाहिर है कि अगले–दो दशकों में हमें इंधन व लकड़ी की कमी से जूझना है। समेकित कृषि में यदि कृषि–सह–वानिकी के अर्न्तगत इन उपयोगी वृक्षों को लगाया जाए तो यह फसल के साथ इन वृक्षों/पौधों द्वारा उपर्युक्त समस्या पर निदान पाया जा सकता है क्योंकि जिस रफतार से जंगलों की कटाई हो रही है यदि उस पर नियंत्रण न रखा गया तो भावी पीढ़ी के विकास के लिए हम खुद ही उत्तरदायी होंगे।
11. कृषि फसलों के साथ अन्य घटकों के समायोजन से श्रमिकों की माँग भी बढ़ती है। चूंकि ये घटक वर्ष भर गतिशील होते हैं अतः समेंकित कृषि में श्रमिक नियोजन की क्षमता बढ़ जाती है जो कि बेरोजगारी दूर करने में मददगार है।
12. जो किसान कृषि के साथ अन्य घटकों का समायोजन करते हैं जैसे कि बागवानी, खुंभ उत्पादन, रेशम या लाह उत्पादन, कुक्कुट या मधुमक्खी पालन, स्पॉन उत्पादन, पशुधन उत्पादन, बायोगैस उत्पादन आदिय लम्बे समय तक इन घटकों को अपने कृषि में समायोजन करने से उन्हें उस घटक के बारे में पूर्ण विशिष्टता प्राप्त हो जाती है जिससे उनके ज्ञान में वृद्धि होती है फलस्वरुप कृषक अपने बच्चों को शिक्षित करने में सक्षम हो जाते हैं। उनकी जीवन शैली में बदलाव तथा रहन–सहन में भी परिवर्तन होगा जिससे समाज का ढाँचा सुदृढ़ होगा और हमारा देश समृद्ध हो पायेगा।

समेकित कृषि प्रणाली के प्रकार :

समेकित कृषि में मूलतः किसी एक घटक पर आधारित करके दूसरे घटको को समन्वित किया जाता है। देश में मुख्यतः तीन घटक आधारित कई खेती प्रणालियॉ अपनायी जा सकती है –

अ) मत्स्य आधारित समन्वित कृषि प्रणालीः

- बागवानी – सह –मात्स्यिकी
- धान्य फसल – सह –मात्स्यिकी
- रेशम पालन – सह –मात्स्यिकी
- बत्तखपालन – सह – मात्स्यिकी
- कुक्कुट पालन – सह –मात्स्यिकी
- दुधारु पशु पालन – सह –मात्स्यिकी
- सूअर पालन – सह –मात्स्यिकी
- बकरी पालन – सह –मात्स्यिकी
- खरगोश पालन – सह –मात्स्यिकी

ब) फसल आधारित समन्वित कृषि प्रणाली

- धान – सह –मात्स्यिकी
- फसल –सह–मात्स्यिकी/बत्तख पालन कृषि प्रणाली
- फसल –सह– बागवानी कृषि प्रणाली
- फसल –सह– बागवानी – सह – वानिकी कृषि प्रणाली
- फसल –सह– बागवानी – सह – चारागाह सह वानिकी कृषि प्रणाली

स) पशुधन आधारित समन्वित कृषि प्रणाली

- फसल –सह– बकरी पालन
- फसल –सह– दुधारु पशुपालन
- फसल –सह– दुधारु पशुपालन सह मात्स्यिकी
- वनिकी –सह– पशुपालन
- कृषि फसल – सह – बकरी पालन
- कृषि फसल – सह – बागवानी –सह – सूअर पालन इत्यादि

बिहारमें समेकित कृषि प्रणाली

कृ ा बिहार की आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ है जिससे लगभग 80 प्रतिशत लोग अपना जीविकोपार्जन करते हैं तथा इसके द्वारा बिहार के सकल घरेलू उत्पाद का 40 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। देश में 55 प्रतिशत श्रमिक कृ ा में रोजगार पाते हैं लेकिन बिहार में तीन – चौथाई से ज्यादा श्रमिक रोजगार के लिए कृ ा पर ही निर्भर हैं। बिहार में कृ ा के सामने कई चुनौतियॉ सुरसा की तरह मुहॅ खोले खड़ी हैं जैसे – कम उत्पदकता, क्षेत्र भिन्नताएॅ एवं कृ ा में विविधिकरण इत्यादि। कृ ा विभाग में नवजीवन लाने के लिए आज हमारे राज्य में 'कर्म–प्रधान नीति' लागू करने की आवश्यकता है। बिहार एक ज्वलंत उदाहरण है ऐसे संसाधनों के धनी राज्य का जिसमें गरीब लोग निवास करते हैं तथा संभावनाएॅ/क्षमताएॅ तो काफी है किंतु उत्पादकता कम है। यह अनुसंधानकर्त्ताओं एवं प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधकों के सामने एक चुनौती है कि समय की मांग के अनुसार वे ऐसी प्रभावी रणनीति बनाएं जो कृ ा कार्यों में व्यस्त गरीब किसानों का जीवनस्तर कृ ा विकास द्वारा ऊपर उठा सकें।

बिहार में फसलों का उत्पादन उसकी उत्पादकता क्षमता से काफी कम है। बिहार प्राकृतिक संसाधनों के हिसाब से धनी होते हुए भी एक गरीब राज्य की श्रेणी मे आता है जहॉ कि 42.60 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे गुजर–बसर करती है। यहॉ की उत्पादकता के कम होने के निम्नलिखित कारण हैः इनफ्रास्ट्रकचर की कमी, जोत का आकार एवं भैगोलिक स्थिति।

बिहर में सिंचित क्षेत्र का प्रतिशत राष्ट्रीय औसत (60 प्रतिशत) से भी कम है जो कि लगभग 50 प्रतिशत है, जबकि पंजाब में सिंचित क्षेत्र 95 प्रतिशत और उत्तर प्रदेश में करीब 67 प्रतिशत है। यहॉ भूगर्भ जल का उपयोग भी करीब 39 प्रतिशत ही है। बिहार की करीब 9.41 लाख हे. भूमि बाढ़ ग्रसित है जो कम उत्पादकता का एक महत्वपूर्ण कारण है।

पूरा बिहार मध्य गांगेय मैदानी क्षेत्र में पड़ता है जिन्हें तीन भागों में बॉटा गया हैः

1. उत्तर बिहार के मैदानी भाग

2. उत्तर – पूर्वी बिहार के मैदानी भाग व
3. दक्षिण बिहार के मैदानी भाग

अ) उत्तर बिहार एवं उत्तर – पूर्वी बिहार के मैदानी भाग : पूरे उत्तर एवं उत्तर पूर्वी बिहार में काफी संख्या में तालाब, झील, चौर, मौन्स एवं नदियॉ पाये जाते हैं और पानी करीब 6–7 महीनों तक जमा रहता है। कुछ भाग में पानी सालों भर विद्यमान रहता है। अतः ऐसे क्षेत्र के लिए मछली पालन, मखाना – सह – मछली, सिंघाड़ा – सह – मछली, धान – सह – मछली उत्पादन पर जोर देना आवश्यक है क्योंकि इस क्षेत्र में मछली व मखाना उत्पादन की असीम संभावनाऍ हैं। इस क्षत्र में दुधारू पशुओं की संख्या 60 – 125 प्रति वर्ग कि. मी. है। दुधारू पशुओं में गाय एवं भैसों को दूध के लिए पाला जाता है तथा बकरी को मॉस उत्पादन के लिए पाला जाता है। यहॉ पर बकरी पालन की असीम संभावनाऍ हैं क्योंकि हरा चारा सालों भर यहॉ उपलब्ध है। यहॉ संभवित प्रमुख समेकित कृ ा प्रणाली हैः

- मखाना+मछली
- मखाना + सिंघाड़ा + मछली
- धान + मछली
- फसल + बकरी पालन
- फसल + दुग्ध उत्पादन आदि।

दक्षिणी बिहार के मैदानी एवं पठारी भागः

ब) दक्षिणी बिहार के मैदानी भाग में धान–गेहूँ एक प्रमुख फसल प्रणाली है। पर इसकी उत्पादकता औसत रा ट्रीय उत्पादकता से भी कम है। इस क्षेत्र में औसत धान की उत्पादकता 20.5 क्वि./हे., गेहूँ (22.61 क्वि./हे.), दाल (10.2 क्वि./हे.) आलू (159 क्वि./हे.) एवं गन्ना की औसत उत्पादकता करीब (770.27 क्वि. /हे.) मात्र है जबकि मक्का की उत्पादकता में यह रा ट्रीय औसत को भी पार कर जाता है इस क्षेत्र की संभावित समेकित कृ ा प्रणाली हैः

- फसल + बागवानी
- फसल + मछली पालन
- फसल + दुग्ध उत्पादन
- फसल+बकरी पालन
- फसल + बकरी + मुर्गी पालन
- फसल + मछली पालन+ बत्त्ख पालन आदि।

उत्तर – पूर्वी के मैदानी भाग को छोड़कर यहॉ कुछ पठारी भाग भी विद्यमान है जहॉ कि ऊँची भूमि पर व ा आश्रित खेती धान की खेती होती है जिसकी पैदावार काफी कम है। इस क्षेत्र की मिट्टी लाल–पीली है जो कि व ा के कारण कटाव से प्रभावित है। मृदा अपरदन एवं कटाव इसके मुख्य समस्या है। यहॉ पर व ा जल को संचित करने की जरूरत है तथा बागवानी फसलों की असीम संभावनाऍ हैं। इस क्षेत्र की जनसंख्या एवं भौगोलिक स्थिति के अनुसार प्रसतावित समेकित कृ ा प्रणाली है :

- फसल+बकरी / सूअर पालन
- फसल+बकरी / दुग्ध उत्पादन / भेड़ पालन
- कृ ा – सह – वानिकी + डेयरी
- बगवानी फसलें +सूअर / मुर्गी पालन
- फसल + बागवानी + मुर्गी + मधुमक्खी पालन आदि।

समेकित कृषि प्रणाली के प्राथमिक उद्देश्यः

- कृषि फार्म की उत्पादकता में वृद्धि को बाधित करने वाले कारको की पहचान करना।
- कृषकों की सहभागिता को प्राथमिकता देते हुए संसाधनों के सदुपयोग हेतु तकनीकी फेर–बदल करना।
- कृषकों की सहभागिता द्वारा समेकित कृषि प्रणाली में प्रयोग होने वाले तकनीकों में परिशोधन करना एवं कृषकों का विचार लेना।
- लिंगो के अनुपात को कृषि प्रणाली में समायोजित करते हुए कृषि प्रणाली के विभिन्न घटकों द्वारा हुए परिवर्तन या उत्पादकता पर नजर रखना।

समेकित कृषि प्रणाली शोध के उद्देश्यः

- कृषि उत्पादन से सम्बन्धित भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन।
- कृषकों की जरूरतों, उनकी बौद्धिक क्षमता, बाधायें एवं प्राथमिकताओं का अध्ययन।
- परम्परागत कृषि प्रणालियों का अध्ययन एवं उनमें सुधार की गुंजाइश तलाशना।
- सामान्य कृषि व्यवस्था वाले क्षेत्रों के लिए नये समेकित कृषि प्रणाली का मॉडल तैयार करना।
- कृषकों द्वारा बताये गए देशी ज्ञान पर शोध कर उनमें सुधार करना एवं उनको नये समेकित कृषि–प्रणाली में समायोजित करना।
- नये विधि विकसित समेकित कृषि मॉडलों का प्रसार करना एवं विकसित मॉडल द्वारा उत्पन्न आर्थिक व सामाजिक पहलुओं का सिलसिलेवार ढंग से अध्ययन कर उनमें पुनः सुधार के अवसरों को पहचानना।

कृषि अनुसंधान एवं समेकित कृषि अनुसंधान में अन्तरः

क्रम सं.	कृषि अनुसंधान	समेकित कृषि अनुसंधान
1	यहॉ अनुसंधान एक विशेष घटक पर किया जाता है साथ ही एक ही प्रणाली में किया जाता है। उदाहरणार्थः फसल प्रणाली में केवल फसलों पर ही अनुसंधान किया जाता है, उसमें कृषि के अन्य घटकों जैसे– मछली, पशु– पालन आदि का अध्ययन न के बराबर होता है।	यहॉ समेकित कृषि प्रणाली पर अनुसंधान किया जाता है। समेकित कृषि प्रणाली का मतलब है कि यहॉ फसल, मात्स्यिकी, मृदा, पशुपालन, वर्मी – कम्पोस्ट, मुर्गी पालन आदि विषयों पर एक साथ अनुसंधान एवं अध्ययन करना।

क्रम सं	कृषि अनुसंधान	समेकित कृषि अनुसंधान
2 -	इस अध्ययन के द्वारा जो तकनीके विकसित होती है वो किसानों के लिए उचित है या नहीं, किसान उसे करने में सक्षम है या नहीं पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। इस अनुसंधान में विषय–वस्तु पर ज्यादा जोर दिया जाता है। विकसित तकनीकों की काफी मॅहगी होने की संभावना ह ोती है।	यहॉ पर समेकित कृषि प्रणाली स्थान विशेष के वातावरण, किसानों की समस्याओं एवं अन्य बातों को ध्यान में रखते हुए विकसित किया जाता है, जिसमें किसानों का भी परोक्ष रूप से योगदान होताहै, अतः विकसित तकनीक किसानों के द्वारा यथाशीघ्र बड़े पैमाने पर अपनायी जाती है।
3	इस अध्ययन में एक श्रृंखला (बड़े–छोटों) की होती है। प्रचार–प्रसार की कड़ी भी कई श्रृंखलाओं से गुजरती है जिससे कि तकनीक के प्रचार–प्रसार एवं उनके अपनाने की गति मंद होती है।	चूँकि यह किसानों के द्वारा (परोक्ष रूप में) एवं किसानों के लिए विकसित की जाती है अतः इसका प्रचार – प्रसार एवं कनीक को अपनाने की गति काफी तेज होती है।
4	किसान विकसित तकनीक के बारे में संशय में रहते हैं। तकनीकी चूँक होने पर घाटे की पूरी संभावना होती है।	इस तरह से विकसित तकनीक किसानों के मित्र की तरह होती है एवं कृषक उसकी सफलता से परिचित होते हैं।
5	इसमें भौगोलिक स्थिति, भू–संरचना, सामाजिक–आर्थिक स्थिति एवं अन्य उत्पादन के बिन्दुओं पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है।	इसमें भौगोलिक स्थिति, वातावरण, मौसम, पानी, मृदा, सामाजिक एवं आर्थिक पहलू आदि पर ि वशेष ध्यान दिया जाता है।
6	यह खर्चीला होता है एवं एक वस्तु विशेष के उत्पादन को बढ़ाता है।	शुरूआती दौर में कुछ पूँजी लगती है, पर उत्पादन एक प्रणाली के अंतर्गत होने से प्रति एकड़ लाभ अधिक होता है।
7	रोजगार सृजन के अवसर उपलब्ध नही होते हैं।	समेकित कृषि प्रणाली के अन्तर्गत रोजगार सृजन के अवसर होते हैं।
8	विकसित तकनीक वातावरण के मित्र के रूप में आयेंगे या वातावरण को नुकसान पहुँचायेगें इसका संभावना बनी रहती है। साथ ही तकनीक कितने लंबे समय तक चलेगी इसकी अनुमान नहीं होता है।	यहॉ पर जो तकनीक विकसित होती है, वो वातावरण के साथ मित्र रूप में ही होती है एवं तकनीक के लम्बे समय तक बने रहने की पूरी संभावना रहती है।
9	पारम्परिक कृषि ज्ञान/एवं देशी तकनीकों के उपयोग की मात्रा क्षीण रहती है।	पारम्परिक कृषि ज्ञान एवं देशी तकनीकों के उपयोग की पूरी–पूरी संभावना विद्यामान रहती है।

समेकित कृषि प्रणाली की आर्थिकी

भा0 कृ0 अनु0 प0 के पूर्वी शोध परिसर द्वारा समेकित कृषि प्रणाली के दो मॉडल का विकास विभिन्न परिस्थितियों के लिए किया गया है जिसमें 1 एकड़ के अवयवों का चयन 1 एकड़ क्षेत्र के लिए (मध्यम से ऊँची भूमि) जैसे कि धान्य फसल + बकरी पालन + मुर्गी पालन + खुंभी उत्पादन + केंचुआ खाद उत्पादन तथा 2 एकड़ क्षेत्र के लिए (निचली भूमि) खाद्य फसल+ मातिस्यकी–

सह– बत्तख पालन+ गौ–पालन + बागवानी + केंचुआ खाद उत्पादन आदि को समाहित किया गया है। अध्ययन में यह पाया गया कि समेकित कृषि प्रणाली को अपनाने पर कृषकों की आय क्रमशः धान– गेहूँ प्रणाली की अपेक्षा 4 से 5 गुनी बढ़ जाती है। दोनों मॉडलों की विस्तृत आर्थिकी नीचे दी गयी है:–

समेकित कृषि प्रणाली मॉडल का स्थापना खर्च, लागत एवं शुद्ध आमदनी

दो एकड़ क्षेत्र के लिए आदर्श समेकित कृषि प्रणाली मॉडल				एक एकड़ क्षेत्र के लिए आदर्श समेकित कृषि प्रणाली मॉडल			
घटक	स्थापना लागत (रु.)	वार्षिक लागत (रु.)	शुद्ध आमदनी (रु.)	घटक	स्थापना लागत (रू.)	वार्षिक लागत (रू.)	शुद्ध आमदनी (रू.)
खाद्य फसलें (0.4 हे.)	-	30,080	35,810	खाद्य फसलें (0.2 हे.)	–	15,100	17,250
बगवानी (0.15 हे.)	2,500	31,830	33,737	बगवानी (0.09 हे.)	10,000	13,946	15,230
चारा फसलें (0.1 हे.)	-	6,900	7,815	चारा फसलें	-	5,180	7,352
मत्स्य पालन (0.1 हे.)	70,000	16,890	38,170	बकरी पालन (0.018 हे.)	65,220	20,042	25,764
बतख पालन	18,000	10,200	18,418	खुंभी उत्पादन (0.003 हे.)	9,000	7,280	8,770
गौ पालन (2+2) (0 . 16हे.)	1,00,000	80,250	48,025	कुक्कट पालन (700 चुजें) (0.0015 हे .)	18,130	37,380	25,261
केंचुआ खाद+ चाहरदीवारी फसल	45,000	12,310	21,768	केंचुआ खाद+ चाहरदीवारी फसल	8,000	5,747	6,723
कुल	**2,35,000**	**1,88,560**	**2,07,805 लाभः लागत :: 2.07**	**कुल**	**1,10,350**	**1,04,675**	**1,06,350 लाभः लागत :: 2.02**

समेकित कृषि प्रणाली में महिलाओं की भागीदारी का भी काफी महत्व है। महिलाएँ कृषि कार्य के साथ–साथ भंडारण का भी कार्य संभालती हैं। पशुओं के अलावा अन्य घटक जैसे मशरुम उत्पादन, वर्मीकम्पोस्ट बनाना, मधुमक्खी पालन इत्यादि कई ऐसे कार्य हैं जिनमें महिलाओं का सक्रिय योगदान होता है। साथ ही साथ यदि पुरुष एवं महिलाएँ मिलकर समेकित कृषि प्रणाली में

अपना योगदान दे तो लागत में काफी कमी आ जायेगी तथा अधिक लाभ की संभावना होगी। विभिन्न घटकों के समायोजन के कारण जलवायु में आने वाले परिवर्तनों का प्रभाव भी समेकित कृषि प्रणाली में कमतर पाया गया है। अतः आज के परिदृश्य में समेकित कृषि प्रणाली सर्वथा उपयोगी एवं लाभदायी है।

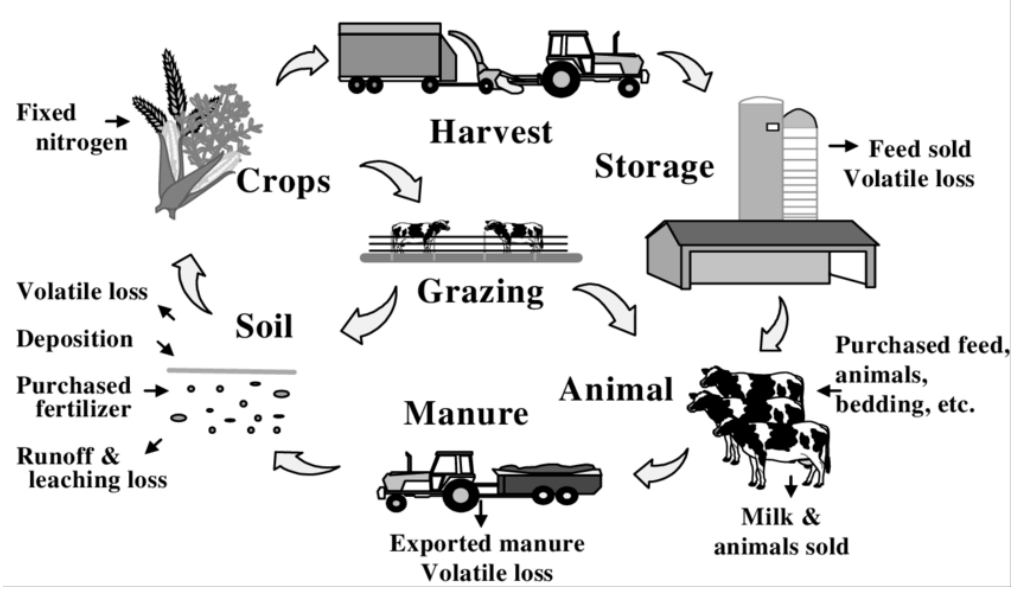

IFS Model

17 कृषक समुदाय को सशक्त बनाने में किसान उत्पादक संगठन (FPO) की भूमिका

शिवराज सिंह, रोहित कुमार, योगिता शर्मा अवधेश कुमार झा एवं भोला नाथ
गव्य व्यवसाय प्रबंधन विभाग, संजय गांधी दुग्ध प्रौद्योगिकी संस्थान, बिहार पशु विश्वविद्यालय, पटना

परिचय : भारत सरकार ने 2020 में ''10,000 किसान उत्पादक संगठनों (FPO_s) के गठन और संवर्धन'' के लिए केंद्रीय क्षेत्र योजना शुरू की है, जिसके लिए कुल बजट 6,865 करोड़ रुपये है। इस योजना का उद्देश्य किसानों की उद्यमिता बढ़ाना, पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं का लाभ उठाना, उत्पादन लागत को कम करना और किसानों की आय को उनके कृषि उत्पादों के संकलन के माध्यम से बढ़ाना है, जिससे स्थायी आय की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा सके। किसान उत्पादक संघ जलवायु परिवर्तन के प्रति कृषि समुदायों की कृषि आय में सुधार करने, सामूहिक व्यापारिक निर्णय को सक्षम बनाने और उतार–चढ़ाव तथा बाजार जोखिमों से निपटने में सक्षम रहे हैं। भारत में किसानों का संगठित होना एवं सहकारी क्रांति की शुरुआत 1904 में शुरू हुआ, हालांकि किसानों के संस्थानों के रूप में एफपीओ को प्रोत्साहित करने का विशेष प्रयास 2011–12 में कृषि और किसान कल्याण विभाग (DA&FW) की दो केंद्रीय क्षेत्र योजनाओं, अर्थात् ''ग्राम पहल शहरी क्लस्टरों (VICU)'' और ''वर्षा निर्भर क्षेत्रों में 60,000 दाल गांवों का एकीकृत विकास'' के तहत शुरू हुआ। प्रचार संबंधी पहलों को और अधिक गति मिली जब DA&FWने 2013 में लघु कृषक कृषि व्यवसाय संघ (SFAC) को केंद्रीय नोडल एजेंसी (CNA) के रूप में नामित करते हुए एफपीओ के लिए राष्ट्रीय नीति और प्रक्रिया दिशानिर्देश तैयार किए। जहां तक किसान उत्पादक संघ को बढ़ावा देने का सवाल है, एसएफएसी, नाबार्ड जैसे विभिन्न संगठन और एजेंसियां हैं, जो भारत सरकार से वित्तीय सहायता के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में किसान उत्पादक संघ को बढ़ावा दे रही हैं।

1. किसान उत्पादक संघ का विकासः

पिछले एक दशक में, देश भर में किसान उत्पादक संघ की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। भारत में किसान उत्पादक संघ (FPO) के विकास के संदर्भ में प्रमुख राज्यो जैसे कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश मे किसान उत्पादक संघ की संख्या सर्वाधिक है (चित्र 1)।ये राज्य केवल कुछ उदाहरण हैंय भारत के अन्य राज्यों में भी किसान उत्पादक संघ के विकास के लिए विभिन्न पहलों और योजनाओं को लागू किया गया है। FPOके माध्यम से किसानों को एकजुट कर उनकी समस्याओं का समाधान निकालने और उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने की दिशा में काफी प्रगति हुई है।

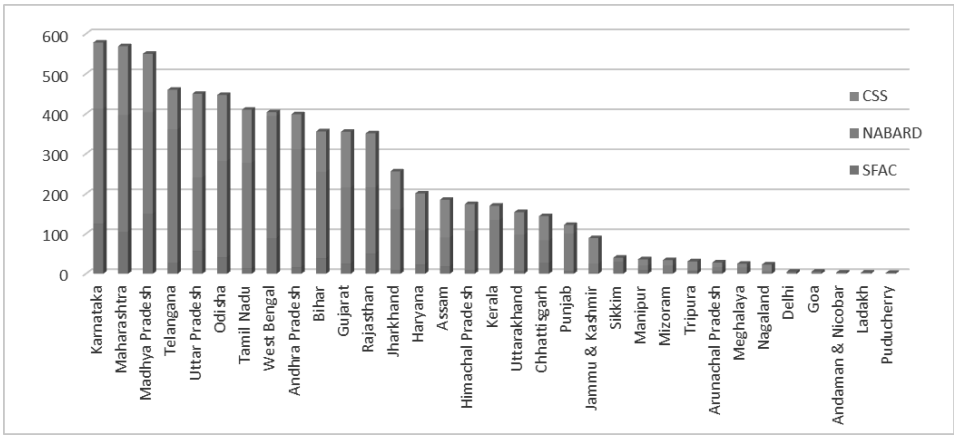

स्रोतः प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार, 2022

चित्र 1 : विभिन्न एजेंसियों के माध्यम से पंजीकृत एफपीओ (किसान उत्पादक संगठन) की राज्यवार संख्या

2 : राष्ट्रीय किसान–उत्पादक संगठन नीति (एनपीएफपीओ)

एफपीओ प्रोत्साहन में एकरूपता और आपस में जुड़ाव की कमी, और एफपीओ पर समग्र डेटा की कमी के कारण 15 नवंबर, 2017 को आयोजित कैबिनेट सचिव की बैठक में DA&FW एक समान ''एफपीओ के लिए राष्ट्रीय नीति ढांचा'' तैयार करने का निर्देश दिया गया।

एफपीओ पात्रताः नीति के तहत लाभों के लिए निम्नलिखित मानदंडों को पूरा करना आवश्यक होगाः

1. इसे किसान–उत्पादकों द्वारा गठित किया जाना चाहिए जिन्हें ''सदस्य'' कहा जाता है। गैर–उत्तर–पूर्वी क्षेत्र (एनईआर) राज्यों, पहाड़ी क्षेत्र और केंद्र शासित प्रदेशों (यूटी) में गठित एफपीओ के लिए न्यूनतम 300 सदस्य होने चाहिए, जबकि एनईआर राज्यों, पहाड़ी क्षेत्र और यूटी के लिए न्यूनतम 100 सदस्य होने चाहिए।
2. इसे कानूनी इकाई के रूप में पंजीकृत/अधिगृहित किया जाना चाहिए, या तो कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) के भाग IXA के प्रावधानों के तहत या कंपनी अधिनियम 2013 (2013 का 18) की धारा 465(1) के प्रावधानों के साथ, या उस समय लागू किसी भी सहकारी समाज से संबंधित कानून के तहत।
3. इसे केंद्रीय सरकार द्वारा बनाए गए ''एफपीओ रजिस्ट्री पोर्टल'' के साथ पंजीकृत होना चाहिए और एफपीओ को एक अद्वितीय पहचान संख्या (RIC) आवंटित किया जाना चाहिए। राज्य/यूटी स्तर के ''एफपीओ रजिस्ट्री पोर्टल'' के साथ पंजीकृत और एपीआई या अन्य ऐसे तंत्र के माध्यम से केंद्रीय ''एफपीओ रजिस्ट्री पोर्टल'' से जुड़े एफपीओ और केंद्रीय सरकार द्वारा आवंटित RIC भी पात्र होंगे।

- पहाड़ी क्षेत्रध्क्षेत्र का मतलब है समुद्र तल से 1000 मीटर या उससे अधिक की ऊंचाई पर स्थित

3 डेयरी किसान उत्पादक संघः

डेयरी किसान उत्पादक संघ, डेयरी उत्पादन से जुड़े किसानों को संगठित करने का एक सामूहिक संगठन है। यह संगठन दुग्ध उत्पादकों को सामूहिक रूप से एकजुट करता है ताकि उन्हें उत्पादन, विपणी, और अन्य संबंधित क्षेत्रों में सहभागी बनाया जा सके। इससे किसानों को बेहतर दायित्व, बाजार पहुंच, और उत्पादों की बेहतर मूल्य निगमन में मदद मिलती है। डेयरी किसान उत्पादक संघ उन्हें तकनीकी सहायता, ऋण, और अन्य सामूहिक लाभ प्रदान कर सकता है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है।

कुछ चयनित सदस्य डेयरी किसान उत्पादक संघ के बोर्ड का हिस्सा बनेंगे। इसके बाद इनमें से कुछ सदस्य कंपनी के निदेशक के रूप में कार्य करेंगे। नाबार्ड/एसएफएसी के अधिकारी इस कंपनी के पंजीकरण में मदद करते हैं।

NDDB डेयरी सर्विसेज (एनडीएस) कंपनी एक ऐसा संगठन है, जिसे दूध क्षेत्र की गहन समझ है और इस कमोडिटी से निपटने में कई वर्षों का अनुभव है। एनडीएस ने 2012 से 2021 के बीच भारत के 10 राज्यों में 16 दूध उत्पादक कंपनियों (एमपीसी) के निगमन का समर्थन किया। इनमें से छह एमपीसी को राष्ट्रीय डेयरी योजना के तहत राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, गुजरात, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और बिहार राज्यों में बढ़ावा दिया गया। महाराष्ट्र, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में टाटा ट्रस्ट के लिए पांच ग्रीनफील्ड एमपीसी और राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश में NRLM/SRLM के लिए पांच और एमपीसी स्थापित किए गए। जनवरी 2022 तक 16 दूध उत्पादक कंपनियों ने मिलकर लगभग 0.697 मिलियन दूध उत्पादकों को सदस्य के रूप में नामांकित किया। सभी कंपनियाँ मिलकर प्रतिदिन लगभग 2.9 मिलियन लीटर दूध खरीदती हैं और उनकी शेयर पूंजी 1,670 मिलियन रुपये है। मार्च 2021 को समाप्त वर्ष के लिए इन कंपनियों का टर्नओवर 47,920 मिलियन रुपये था (तालिका1)।

तालिका 1: एनडीडीबी डेयरी सर्विसेज द्वारा सुविधा प्राप्त दुग्ध उत्पादक कंपनियां, मार्च 2021 तक।

वर्ग	एमपीसी की संख्या	कवर किए गए राज्यों की संख्या (परिचालन क्षेत्र)	31 जनवरी 2022 तक वर्तमान स्थिति			वित्तीय वर्ष 2020-21	
			कवर किए गए गांवों की संख्या	सदस्यों की संख्या	शेयर पूंजी (मिलियन रुपए में)	औसत दैनिक दूध प्राप्ति ('000 लीटर प्रति दिन)	कुल राजस्व (मिलियन रुपए में)
राष्ट्रीय डेयरी योजना	6	7	12,469	509,762	1,450	2,566	42,550
ग्रीनफील्ड– टाटा ट्रस्ट	5	5	2,126	89,435	140	235	3,700
ग्रीनफील्ड NRLM/SRLM	5	4	2,410	97,949	80	97	1,670
कुल	16	10	17,005	697,146	1,670	2,898	47,920

स्त्रोतः NDDB डेयरी सर्विसेज

1. किसान उत्पादक संघ के लिए व्यावसायिक नियोजन

व्यापार योजना एक संक्षेप दस्तावेज है जो व्यापार मिशन, बाह्य और आंतरिक व्यवसायिक पर्यावरण, और पूर्व में पहचान की गई समस्याओं के संदर्भ में रणनीति के घटकों को निर्दिष्ट करता है। एक व्यापार योजना तब तैयार की जाती है जब किसी नई प्रयास या महत्वपूर्ण नई पहल की जाती है, नई रणनीति बनाई जाती है। व्यापार की धारणा, व्यापार के अवसर, प्रतिस्पर्धी परिदृश्य, सफलता के लिए आवश्यक घटक, और शामिल होने वाले लोगों के बारे में सही विचार की आवश्यकता है। इस अभ्यास से अक्सर और भी सवाल उत्पन्न होते हैं, और इन नए सवालों का ठीक रूप से अनुसंधान करना आवश्यक है ताकि आने वाली समस्याओं और चुनौतियों का सामना किया जा सके ।

व्यापार योजना बनाने की तैयारी, व्यापार विचार उत्पन्न करके शुरू होती है, जिसके पश्चात् अवसर और खतरों का विश्लेषण होता है जो उपयुक्त व्यापार अवसरों की पहचान की ओर बढ़ता है। एक बार व्यापार अवसर पहचाना जाता है, तो एक मार्केटिंग योजना तैयार की जाती है। प्रक्रिया का अंतिम हिस्सा वित्तीय योजना से संबंधित होता है। निम्नलिखित आरेखीय डेयरी क्षेत्र में प्रोत्साहित किए जाने वाले एफपीओ के व्यापार मॉडल को दर्शाता है (चित्र 2)।

चित्रः 2 डेयरी व्यवसाय मॉडल

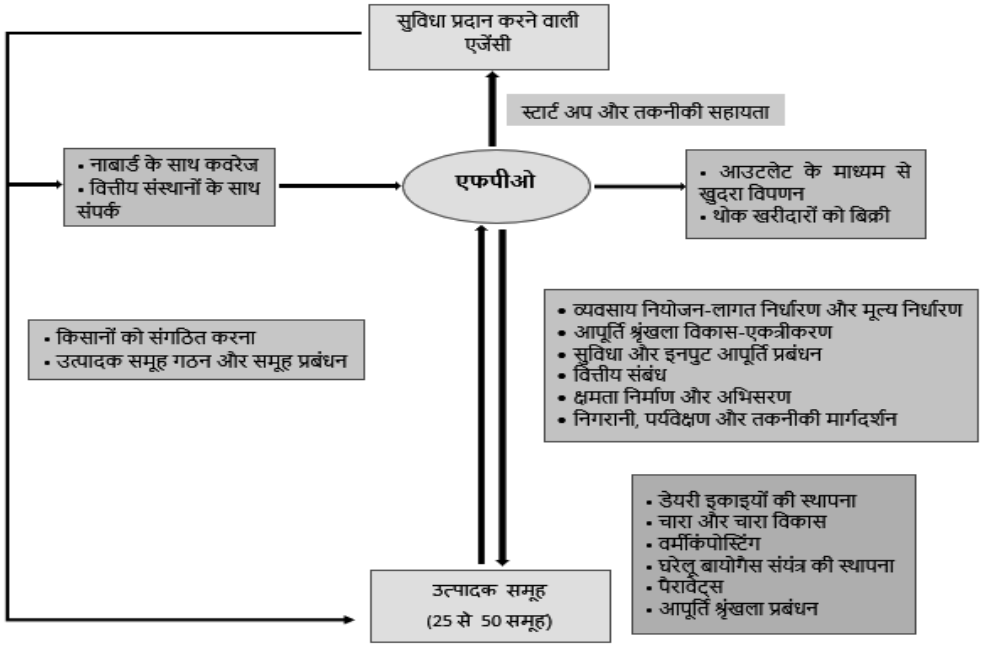

स्त्रोतः नाबार्ड रिपोर्ट

18 दुधारू पशुओं में होने वाले प्रमुख परजीवी जनित रोग एवं बचाव

अजीत कुमार एवं शायमा के. पी.

परजीवी विज्ञान विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय

बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना

दुधारू पशुओं (गाय–भैंस) के स्वास्थ्य एवं उत्पादन क्षमता (दूध उत्पादन, प्रजनन क्षमता, कार्य करने की क्षमता आदि) पर जीवाणु, विषाणु जनित रोगों के अलावे परजीवी जनित रोगों का बहुत दुष्प्रभाव पड़ता है। गाय–भैंस पालन से समुचित लाभ प्राप्त करने के लिए गाय–भैंस को परजीवी जनित रोगों (अन्तः परजीवियों एवं वाह्य परजीवियो के द्वारा) से बचाव करना बहुत जरूरी होता है क्योकि परजीवियों के संक्रमण होने पर स्वास्थ्य एवं उत्पादन क्षमता पर अत्याधिक कुप्रभाव पडने के अलावे समयानुसार समुचित उपचार न करने पर परजीवी संक्रमित गाय–भैंस की मृत्यु ही हो जाती है। अतः पशुपालक गाय–भैंस में होने वाले प्रमुख परजीवी जनित रोगों के बारे मे जानकारी रखकर समयानुसार बचाव के उपायों को अपनाकर परजीवियों के संक्रमण से होने वाले आर्थिक क्षति को बहुत हद तक कम कर सकते है ।

गाय–भैंस में होने वाले प्रमुख परजीवी जनित रोगें निम्नलिखित है :–

फेसियोलोसिस :

यह रोग पत्ती के आकार के फेसियोला नामक चपटा कृमियों के गाय–भैंस के पित्तवाहिनियों एवं यकृत में पाए जाने के कारण होता है। फेसियोला कृमि को लिवर फ्लूक एवं इससे होने वाले रोग को **लिवर फ्लूक रोग** के नाम से जाना जाता है। इस रोग के फैलाव लिमनीया प्रजाति के जलीय घोंघा (मध्यस्थ पोषक) के द्वारा होता है।

रोग का फैलाव – फेसियोलोसिस रोग से प्रभावित पशु के गोबर के साथ कृमि का अण्डा बाहर निकलकर विकसित होकर मिरासीडियम लार्वा बनाता है जो घोंघा के अन्दर पहुँच कर दूसरा लार्वा बनाता है और घोंघा से बहुत संख्या में सरकेरिया लार्वा बाहर निकलता है जो आस–पास के जलीय घासों से चिपक कर मेटासरकेरिया सिस्ट बनाता है। फिर सिस्ट संक्रमित घास के खाने के साथ मेटासरकेरिया पशु के शरीर के अन्दर पहुँच कर फेसियोलोसिस रोग पैदा करता है।

रोग का लक्षण – फेसियोलोसिस रोग से संक्रमित गाय–भैंस के भूख में कमी, पाचन क्रिया के बिगड़ जाने के कारण पहले कब्ज व फिर रोग की अन्तिम अवस्था में पतला दस्त होना, खून की कमी, जबड़े के नीचे सूजन (बोटल जॉ), संक्रमित दुधारू पशुओं के दूध उत्पादन मे अत्याधिक कमी, पशु का धीरे– धीरे कमजोर हो जाना एंव समयानुसार समुचित उपचार न होने पर रोगग्रस्त पशु की मृत्यु हो जाना।

रोग का उपचार–फेसियोलोसिस रोग (लिवर फ्लूक रोग) के ईलाज में ऑक्सीक्लोजानाइड

नामक कृमिनाशक दवा की 01 ग्राम मात्रा प्रति 100 किलोग्राम पशु शरीर वजन पर या ट्रिक्लाबेन्डाजोल कृमिनाशक दवा 10 मिलिग्राम प्रति किलोग्राम पशु शरीर भार पर पशुचिकित्सक से परामर्श लेकर दें। कृमिनाशक औषधि के अलावे सहायक औषधियों जैसे– लीवर टॉनिक एवं दस्त निरोधक का उपयोग उपचार में अवश्य करनी चाहिए ।

अपरिपक्व एम्फीस्टोमियोसिस :

यह फ्लूक कृमिजनित रोग, गाय–भैंस के आँत मे नाशपाती के आकार के एम्फीस्टोम कृमि के अपरिपक्व अवस्थों के मौजूद रहने के कारण **अपरिपक्व एम्फीस्टोमियोसिस** रोग होता है। अपरिपक्व एम्फीस्टोमियोसिस रोग को **छेरा रोग या गिल्लर पिट्ट रोग** भी कहा जाता है । वयस्क एम्फीस्टोम कृमि आमाशय के रूमेन में पाए जाते है जो सामान्यतः हानिकारक नही होते हैं। एम्फीस्टोम कृमि को **आमाशय फ्लूक** या **रूमेन फ्लूक** कहा जाता है ।

रोग का फैलाव – इस कृमि का फैलाव लीवर फ्लूक कृमि के जैसा जलीय घोंघा के प्रजाति इन्डोल्लेनोरबिस के द्वारा होता है। एम्फीस्टोमियोसिस रोग से संक्रमित पशु के गोबर के साथ कृमि का अण्डें बाहर निकलकर विकसित होकर मिरासीडियम लार्वा बनाता है जो घोंघा के अन्दर पहुँच कर दूसरा लार्वा बनाता है और फिर घोंघा से बहुत संख्या में सरकेरिया लार्वा बाहर निकलता है जो आस–पास के जलीय घासों से चिपक कर मेटासरकेरिया सिस्ट बनाता है। फिर सिस्ट संक्रमित घास के खाने या चरने के साथ मेटासरकेरिया लार्वा पशु के शरीर के आँत में पहुँच कर अपरिपक्व एम्फीस्टोमियोसिस रोग पैदा करता है।

रोग का लक्षण – अपरिपक्व एम्फीस्टोमियोसिस रोग से ग्रसित गाय–भैंस में तीव्र बदबूदार पिचकारी के समान पतला दस्त का होना, पशु के शरीर मे पानी की कमी हो जाना जिसके चलते संक्रमित पशु थोड़ी–थोड़ी देर पर पानी पीना शुरू कर देता है । इसके अलावे इस रोग से संक्रमित पशु में खून की कमी (एनिमिया), जबड़े के नीचे सूजन हो जाता है जिसे बोटल जॉ कहते है, दूध उत्पादन मे बहुत ज्यादा कमी एवं जल्द समुचित उपचार नही होने पर संक्रमित गाय–भैंस मृत्यु का शिकार के हो जाते हैं।

रोग का ईलाज–इस रोग के ईलाज में ऑक्सीक्लोजानाइड औषधि की 01 ग्राम मात्र प्रति 100 किलोग्राम पशु शरीर भार पर पशुचिकित्सक के देखरेख में देनी चाहिए । कृमिनाशक औषधि के अलावे लीवर टॉनिक, दस्त निरोधक औषधि एवं शरीर में पानी की कमी को दूर करने हेतु तरल पदार्थ चिकित्सा (Fluid therapy) का उपयोग जरूर करें ।

रोग से बचाव– जलीय घोंघों से संक्रमित स्थानों के आस–पास पशुओं को नही चराना तथा घोंघा से संक्रमित तलाबों में पशु को स्नान नही कराना एवं पानी भी नही पिलाना चाहिए। जलीय पौधों एवं घोंघों से संक्रमित स्थानों के आस–पास से चारा लाने के बाद अच्छी तरह साफ पानी से धोने के बाद ही पशुओं को खिलाना चाहिए। घोंघा को पनपने नहीं देने के लिए जल का जमाव नही होने दें। घोंघा संक्रमित जलीय स्थानों पर घोंघा नाशक रसायन बालू के साथ मिलाकर अधिक धूप वाले दिन में छिड़काव करनी चाहिए। तालाबों आदि में बत्तख पालन करना चाहिए

क्योंकि बत्तख घोंघा को खाता है। इस रोग से गाय–भैंस को बचाने हेतु प्रति वर्ष मई एवं दिसम्बर के महीने में ऑक्सीक्लोजानाइड नामक कृमिनाशक दवा जरूर देते रहना चाहिए।

नेजल सिस्टोसोमोसिस

नेजल सिस्टोसोमोसिस एक फ्लूक कृमि–जनित रोग है जो सिस्टोसोमा नेजेली नामक खूनी फ्लूक के बैल, गाय, भैंस, भेड़, बकरी एवं घोड़ा के नाक की शिरा मे उपस्थित रहने के कारण होता हैं । इसे **नेजल ग्रेनुलोमा या स्नोरिंग रोग या नकरा रोग** के नाम से भी लोग जानते हैं । संक्रमित पशु के नाक के शिरा में पाए जाने के कारण इसे **खूनी फ्लूक** कहा जाता है ।

रोग का फैलाव – सिस्टोसोमा नेजेली फ्लूक कृमि के जीवन–चक्र में बैल, गाय, भैंस, भेड़, बकरी एवं घोड़ें अन्तिम पोषक का कार्य करते हैं, जबकि जलीय घोंघा जलीय घोंघा प्रजाति इन्डोप्लेनोरबिस इक्जूसटस मध्यस्थ पोषक का कार्य करते हैं । संक्रमित पशु के नाक से स्त्राव के साथ फ्लूक कृमि का अण्डें बाहर निकलकर मिरासीडिया लार्वा में विकसित हो जात है । फिर, मिरासीडिया लार्वा जलीय घोंघा जलीय घोंघा में प्रवेश कर, क्रमशः स्पोरोसीस्ट, डाउटर स्पोरोसीस्ट एवं सरकेरिया लार्वा में परिवर्तित हो जाता हैं । फिर सरकेरिया लार्वा संक्रमित घोंघा से निकलकर पानी मे तैरता रहता है और जब अन्तिम पोषक जैसे– बैल, गाय, भैंस, भेड़, बकरी एवं घोड़ा, पानी पीने या स्नान करने के लिए प्रवेश करती है, तो सरकेरिया लार्वा पशु के चमड़े को छेद कर शिरा में प्रवेश करके, सिस्टोसोमुला (अवस्यक फ्लूक) में परिवर्तित हो जाते है । अवस्यक फ्लूक नाक की शिरा में पहुँच कर वयस्क सिस्टोसोमा नेजेली फ्लूक में विकसित होकर मादा सिस्टोसोमा नेजेली फ्लूक कृमि अण्डें देना शुरू करती हैं । फिर अंडें नाक से स्त्राव के साथ बाहर निकलते है ।

रोग का लक्षण– नेजल सिस्टोसोमोसिस रोग से संक्रमित पशु में सर्दी–जुकाम, नाक से उजला–पीला स्त्राव का निकलना, लगातार छींक आना, श्लेष्मा में सूजन, फूलगोभी के आकार ग्रेनुलोमा विकृति संक्रमित पशु के नाक में हो जाने के कारण पशु को साँस लेने मे कठिनाई होता है जिसके फलस्वरूप इस रोग से प्रभावित पशु नाक से जोर–जोर से आवाज करता है । इसलिए इस रोग को **स्नोरिंग रोग** भी कहा जात है। इस रोग के कारण प्रभावित पशु के शरीर भार में कमी, दूधारू पशुओं के दूग्ध–उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता में कमी तथा कार्य करने वाले पशुओं (बैंल एवं भैंसा) की कार्य क्षमता मे अत्याधिक कमी हो जाता है ।

रोग का उपचार– नेजल सिसटोसोमियोसिस रोग के उपचार में प्राजीक्यूनटल नामक कृमिनाशक दवा की 20 मिलीग्राम मात्रा प्रति किलोग्राम शरीर भार पर एक बार या लिथियम एन्टिमोनी थायोमेलेट का इंजेक्शन मांस में @ 15 मिलीलीटर एक–एक सप्ताह के अंतराल पर 3 बार या ऑक्सीक्लोजानाइड या सोडियम एन्टीमनी टारटरेट औषधि का उपयोग लाभदायक सिद्ध होता है, लेकिन लिथियम एन्टिमोनी थायोमेलेट दवा से यह रोग पूरी तरह ठीक नहीं होता है । कृमिनाशक औषधि का प्रयोग सदैव पशुचिकित्सक के सलाह के अनुसार करनी चाहिए ।

फेसियोलोसिस, एम्फीस्टोमियोसिस एवं नेजल सिस्टोसोमोसिस रोगों से बचाव– इन तीनों फ्लूक कृमि जनित रोगों के फैलाने में जल में पाए जाने वाले घोंघा मध्यस्थ पोषक का कार्य करते है । अतः इन रोगों से गाय–भैंस को बचाने हेतु जलीय घोंघों से संक्रमित स्थानों के आस–पास पशुओं को नही चराए तथा घोंघा संक्रमित तलाबों में पशु को स्नान नही करावें एवं पानी भी नही पिलाना चाहिए। जलीय पौधों एवं घोंघों से संक्रमित स्थानों के आस–पास से चारा लाने के बाद अच्छी तरह साफ पानी से धोने के बाद ही पशुओं को खिलाना चाहिए। घोंघों को पनपने नहीं देने के लिए जल का जमाव नही होने दें। घोंघा संक्रमित जलीय स्थानों पर घोंघा नाशक रसायन जैसे– नीला तुतिया बालू के साथ मिलाकर अधिक धूप निकलने पर दिन में छिड़काव करनी चाहिए। तालाबों आदि में बत्तख पालन करनी चाहिए क्योंकि बत्तख घोंघा को खाता है। इन रोगों से गाय–भैंस को बचाने हेतु प्रति वर्ष मई एवं दिसम्बर के महीने में ऑक्सीक्लोजानाइड नामक कृमिनाशक दवा जरूर देते रहें।

एस्केरिओसिस

गाय–भैंस मे एस्केरिओसिस रोग टोक्सोकारा विटूलोरम (नियोएस्केरिस विटूलोरम) नामक गोल कृमि के द्वारा होता हैं जो उजला, पारदर्शक एवं दूधिया रंग का होता हैं । इस गोल कृमि की लम्बाई लगभग 30 सेंटीमीटर तथा बछड़ों की छोटी आँत में मुख्यतः पाया जाता हैं । इसके कारण भैस के बछड़े, गाय के बछड़े की अपेक्षा ज्यादा मृत्यु के शिकार होते हैं ।

रोग का फैलाव – टोक्सोकारा विटूलोरम के द्वितीयक लार्वा युक्त अंडें को चारे के साथ ग्रहण करने पर 6 माह के ऊपर के बछड़ें एवं वयस्क भैंस की छोटी आँत में अंडें से द्वितीयक लार्वा निकलकर अनेक अंगों एवं ऊतकों में जाकर निष्क्रिय अवस्था में पड़े रहते हैं । नवजात बछड़ों में संक्रमण माँ से द्वितीयक लार्वा संक्रमित दूध या खीस के पीने से होता है । यह कृमि बछड़ों के आँत में ज्यादा दिनों तक नही रहता है बल्कि जन्म के 38 दिनों बाद से निकलना श्शुरू होता है और 6 महीनें की उम्र तक सभी कृमि आँत से अपने आप निकल जाता है ।

रोग का लक्षणः

इस रोग के कारण प्रभावित बछड़ों में मिट्टी रंग का बदबूदार दस्त का होना, बछड़ों की शारीरिक वृद्धि में कमी, त्वचा का खुरदरा हो जाना, पेट ढोलक के जैसा दिखने लगना, दाँत का किटकिटाना, वसायुक्त मल का बाहर निकलना (steatorrhoea), संक्रमित बछड़ा का कभी–कभी मूर्छित होकर जमीन पर गिर जाना एवं छटपटाना । बछड़ों की आँत में इस कृमि की अत्याधिक संख्या के गुच्छे के रूप में मौजूद रहने के कारण आँत में रूकावट पैदा हो जाती है, जिसके फलस्वरूप बछड़ें के शरीर से मल निकलना बंद हो जाता है एवं तत्तपश्चात एस्केरिओसिस रोग से ग्रसित बछड़ा की मृत्यु हो जाती है ।

रोग का उपचार :

इस रोग के उपचार हेतु कृमिनाशक दवायें जैसे–पिपराजीन या फेनवेनडाजोल या लेवामिसोल या आइवरमेक्टिन औषधि का प्रयोग पशुचिकित्सक से सलाह लेकर सदैव करें ।

कृमिनाशक औषधि की एक खुराक देने के बाद पुनः 21 दिन बाद दुबारा देना ज्यादा लाभदायक साबित होता है ।

रोग से बचावः

एस्केरिओसिस रोग से बचाव हेतु बछड़ों में प्रथम कृमिनाशक औषधि 21 दिनों की उम्र पर देने के बाद फिर 42 दिनों के उम्र पर देनी चाहिए । फिर उसके बाद एक–एक महीने के अन्तराल पर 6 महीने तक कृमिनाशक औषधि देते रहना चाहिए । बछड़ों के रहने के स्थान को सदैव साफ रखें । मल संक्रमित आहार बछड़ों को कदापि नहीं खिलाए ।

फेफड़ा कृमि रोग

यह रोग पशुओं के फेफड़ा के श्वास नलिकाओं में पाये जाने वाले डिक्टयोकॉलस विविपेरस गोल कृमि के कारण होता है ।

रोग का लक्षणः

फेफड़ा कृमि से संक्रमित बछड़ों में एक विशेष प्रकार की आवाजयुक्त खाँसी होती है, जिसे हस्क या हुस या घातक फुफ्फुस शोथ (Verminous pneumonia) कहते हैं । इसके अलावा प्रभावित पशु में भुख में कमी तथा अन्तरालिक अतिसार भी देखने को मिलता है । हस्क या हुस या घातक फुफ्फुस शोथ से ग्रसित बछड़ों में खाँसी, नाक से पीपदार झागदार स्त्राव, बुखार, श्वास लेने मे तकलीफ, खून की कमी आदि लक्षण प्रकट होता है ।

रोग का उपचार :

फेफड़ा कृमि से संक्रमित पशुओं के उपचार में डायइथायलकारबेमाजिन @ 50 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम 7 दिनों तक या लेवामिसोल @ 7.5 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम या फेनबेनडाजोल @ 5 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भार की दर से देना लाभदायक सिद्ध होता है।

रोग से बचावः

फेफड़ा कृमि से पशुओं के बचाने हेतु संक्रमित चारागाह में बछड़ों को चरने के लिए नहीं जाने देना चाहिए तथा बछड़ों को वयस्क पशुओं के साथ भी नहीं चराए । बछड़ों को खाने में नमीयुक्त चारा न दें, बल्कि सूखा चारा खिलाना चाहिए, क्योंकि फेफड़ा कृमि के रोग फैलाने वाला लार्वा सूखे चारे जिन्दा नहीं रह पाता है ।

मोनीजियोसिस

यह रोग मोनीजिया बेनेडेनी नामक फीता कृमि से होता है जिसका संक्रमण प्रायः 6 महीनें के उम्र तक के बछड़ें में देखने को मिलता हैं । यह एक बड़ा आकार का फीता कृमि है जो संक्रमित बछड़ा के छोटी आँत मे रहता है । इस कृमि के कारण संक्रमित बछड़ा में अपच, पतला दस्त, कब्ज, खून में कमी, शारीरिक वृद्धि में रूकावट, संक्रमित बछड़ा का पेट बड़ा हो जाना, आँत मे रूकावट आदि लक्षण दिखाई पड़ता है । इस कृमि के संक्रमण के उपचार में कृमिनाशक दवा

जैसे– निकलोसामाइड 100 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम या फेनबेनडाजोल 05 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भार की दर से उपयोग करना फासदेमंद होता है।

कॉक्सिडियोंसिस

यह रोग प्रायः बछड़ों में इमेरिया प्रजाति के प्रोटोजोआ परजीवी के आँत में मौजूद रहने के कारण होता है, जिसके कारण बछड़ों में पतला वदबूदार खूनी दस्त शुरु हो जाता हैं । इसे **खूनी दस्त या खूनी पेचिश** के नाम से भी जाना जाता हैं। इसके अलावे कॉक्सिडिया संक्रमित बछड़ों मे कूथन के साथ मल त्याग करना, खून की कमी, भूख की कमी, सुस्ती, कमजोरी, दुर्वलता एवं न्यूमोनिया का लक्षण भी दिखाई पड़ता है । इस रोग का समुचित उपचार नही होने पर प्रभावित बछड़ों की मृत्यु ही हो जाती है तथा पशुपालक को आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ता हैं । इस रोग का प्रसार बछड़ों में संक्रमित चारा एंव पानी के ग्रहण करने से होता है । कॉक्सिडियोंसिस रोग का प्रकोप मुख्यतः 3 सप्ताह से 6 महीने के उम्र तक के बछड़ों मे अत्याधिक होता है ।

रोग का उपचार :

इस रोग से संक्रमित बछड़ों के इलाज हेतु सल्फामेजाथीन @ 125 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भार के अनुसार से 2 सप्ताह तक या एम्प्रोलियम @ 20–25 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भार की दर से 5 दिनों तक या मोनेनसिन @ 1मिलीग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भार की दर से उपयोग लाभदायक साबित होता है ।

रोग से बचावः

पशुशाला को सदैव स्वच्छ रखें । बहुत सारे बछड़ों को एक साथ या वयस्क पशु के साथ कदापि न रखें। बछड़ों एंव वयस्क पशुओं को एक साथ नहीं बल्कि अलग–अलग चारागाहों मे चराना चाहिए। बछड़ों का आहार पौष्टिक, सुपाच्य तथा विटामीन–ए युक्त होनी चाहिए। चारा–पानी को पशुओं के मल के संक्रमण से बचाना चाहिए तथा संक्रमित चारा–पानी कदापि बछड़ों को न खिलाए।

ट्रिपेनोसोमौसिस (सर्रा) रोग :

○ यह रक्त परजीवी जनित रोग, ट्रिपेनोसोमा इवेन्साई नामक प्रोटोजोआ के पशुओं के रक्त–प्लाज्मा में उपस्थिति के कारण होता है। इसे **'सर्रा'** रोग के नाम से भी जाना जाता है । यह रोग बरसात के समय तथा बरसात के बाद 2–3 महीनों तक अधिक देखने को मिलता है क्योंकि इस मौसम में रोग फैलाने वाले उत्तरदायी मक्खियों जैसे– टेबेनस (मुख्य रूप से) आदि की संख्या अत्याधिक बढ़ जाती है ।

○ इस रोग का फैलाव रोग–ग्रस्त पशु से स्वस्थ पशु में खून चूसने या काटने वाले मक्खी जैसे– टेबेनस (मुख्यतः), स्टोमोक्सिस, लाइपरोसिया आदि के द्वारा होता है । बिहार में टेबेनस मक्खी को पशुपालक 'डांस' मक्खी के नाम से ज्यादा जानते है।

रोग का लक्षण

रोग का लक्षणः

प्रभावित पशु में रूक–रूक कर बुखार आना, बार–बार पेशाब करना, खून की कमी, पशु द्वारा गोल चक्कर लगाना, सिर को दीवार या किसी कड़ी वस्तु में टकराना, खाना–पीना कम कर देना, आँख एवं नाक से पानी बहना, मुँह से भी लार गिरने लगना, प्रभावित पशु का धीरे–धीरे अत्याधिक दुर्बल एवं कमजोर होना, संक्रमित दुधारू पशु का दुध उत्पादन बहुत ज्यादा कम हो जाना, प्रभावित पशु का प्रजनन–क्षमता में कमी एवं गर्भित पशुओं में गर्भपात होने की पूरी संभावना रहना आदि ।

○ ट्रिपेनोसोमियोसिस (सर्रा) रोग के उपचार हेतु क्वानापाइरामीन सल्फेट (0.025 मिलीलीटर प्रति किलोग्राम शरीर भार के अनुसार चमड़ा में) डायमिनाजिन एसीजुरेट @ 3.5 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम, आइसोमेटामिडियम क्लोराइड (0.5 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम), मेलार्सोमिनडायहाइड्रोक्लोराइड (सायमेलारसन) @ 0.5 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम (गाय में) एवं 0.75 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम (भैंस में) शरीर भार के अनुसार औषधि पशुचिकित्सक के परामर्श लेकर दें।

रोग से बचावः

○ सर्रा रोग से बचाव हेतू कोई टीका अभी उपलब्ध नही हैं । अतः इस रोग से बचाव हेतू क्वानापाइरामीन क्लोराइड औषधि या आइसोमेटामिडियम क्लोराइड (0.1 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भार के अनुसार) प्रयोग कर किया जा सकता है जिसके प्रयोग से पशु को 4 महीनो तक सर्रा रोग नही हो पाता है ।

○ सर्रा रोग फैलानेवाले मक्खियों जैसे–टेबेनस आदि की संख्या को नियंन्नण करके भी इस रोग के संक्रमण को कम किया जा सकता है । मक्खियों की संख्या को नियंन्नण कीटनाशक का छिड़काव समयानुसार पशु आवास के अन्दर एवं आस–पास करके रहना चाहिए ।

<u>बबेसियोसिस</u>

यह रोग गाय के खून के लाल रक्त कोशिकाओं में बबेसिया प्रोटोजोआ के मौजूद रहने के कारण होता है। बबेसियोसिस को रेड वाटर, लाल पेशाब रोग आदि नामों से भी जाना जाता है। इस रोग का फैलाव गाय में खून चूसने वाले चमोकन (किलनी या टिक) के द्वारा होता है। इस रोग से ग्रसित पशु में सर्वप्रथम तीव्र बुखार, भूख में कमी, खून की कमी, खून के लाल रक्त कोशिकाआ के टूटने के कारण इसमें उपस्थित हीमोग्लोबिन मूत्र के साथ बाहर निकलना शुरू हो जाता है और संक्रमित पशु का मूत्र का रंग कॉफी के रंग जैसा लाल हो जाता है। लक्षण प्रकट होने पर यदि इलाज में देर की गई तो बीमार गाय की मृत्यु का शिकार हो जाती है । इस रोग की पहचान प्रमुख लक्षणों जैसे– तीव्र बुखार, हीमोग्लोबिन मुत्रता (पेशाब का रंग कॉफी के रंग जैसा लाल हो जाना) के आधार पर एवं खून जाँच के द्वारा किया जा सकता है। इस रोग का प्रकोप बछड़ों में बहुत कम देखने को मिलता है ।

थेलेरियोसिस

यह रोग गाय में थेलेरिया नामक रक्त प्रोटोजोआ के लाल रक्त कोशिकाओं में पाये जाने के कारण होता है। इस रोग का फैलाव भी खून चूसने वाले किलनी (चमोकन या अढैल) के द्वारा होता है। इस रोग से प्रभावित गाय में लगातार बहुत ज्यादा बुखार रहता है तथा स्केपुला के बगल वाले लिम्फ नोड (लसिका ग्रंथि) में सूजन हो जाता है। इसके अलावे शरीर में खून में कमी, पशु द्वारा पूरी इच्छा के साथ आहार न खाना, कभी–कभी संक्रमित पशु को खूनी दस्त होना इत्यादि लक्षण दिखाई पड़ता है । इस रोग का पहचान प्रमुख लक्षण (स्केपुला के बगल वाले लिम्फ नोड में सुजन) तथा रोग–ग्रस्त गाय के खून एवं प्रभावित लिम्फ नोड का आलेप बनाकर किया जा सकता है।

बबेसियोसिस एवं थेलेरियोसिस रोगों का उपचार एवं बचावः

बबेसियोसिस रोग के इलाज हेतु डाइमीनाजीन डाइएसीचुरेट औषधि का @ 3.5 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम या इमिडोकार्बडीप्रोपियोनेट @ 1.2 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भार की दर से सूई चमड़ें में देना चाहिए । इमिडोकार्बडीप्रोपियोनेट @ 3 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भार की दर से बबेसियोसिस रोग से बचाव हेतु प्रयोग किया जा सकता है। थेलेरियोसिस रोग के इलाज हेतु बुपारवाकियोन औषधि 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम या 1 मि.ली. प्रति 20 किलोग्राम शरीर भार की दर से सूई अंतः माँसपेशी में पशुचिकित्सक की देख–रेख में लगवानी चाहिए। इन दोनो रोगों के परजीवी एक पशु से दूसरे पशु में किलनी (चमोकन) के द्वारा पहुँचते है। अतः इन घातक एवं आर्थिक रूप से हानिकारक रक्त–परजीवी जनित रोगों की रोकथाम, किलनी (चमोकन) को मारकर या दूर भगाकर किया जा सकता है।

किलनी (चमोकन) :

यह एक अस्थायी वाह्य परजीवी हैं जो पशुओं के वाह्य शरीर पर पाये जाते हैं। किलनियों के संक्रमण के कारण पशु के शरीर मे खुजलाहट, बेचैनी, रक्त चुसने के कारण गाय मे खून की कमी, दाना–पानी ठीक से ग्रहण नहीं कर पाना, जिसके फलस्वरुप संक्रमित गाय में दूर्बलता, शरीर–भार मे कमी, उत्पादन क्षमता (दुध उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता) में कमी, किलनी पक्षाघात आदि लक्षण दिखाई पड़ता है। किलनियों द्वारा बहुत सारे जीवाणु, विषाणु, रिकेटसिया तथा प्रोटोजोआ जनित रोगों का फैलाव होता है क्योंकि किलनियों इन सूक्ष्मजीवों का वाहक का कार्य करते हैं।

किलनीयों का रोकथाम –

○ किलनीयों को हटाने या बचाने के लिए एकेरीसाइड (अमितराज – 250 पी. पी. एम, साइपरमेथिन या डेल्टामेथ्रिन – 2 मि.ली. एक लीटर पानी मे मिलाकर) बकरी के शरीर पर (मुँह, नाक एवं आँखों को छोड़कर) का धोल या आइवरमेक्टिन– 1 मि.ली./50 कि. ग्राम शरीर भार पर

त्वचा मे सूई का प्रयोग लाभदायक सिद्ध होता है।

○ किलनी से संक्रमित गाय–भैंस के आवास मे मौजूद बिछावन को हटा कर जला देनी चाहिए । गाय–भैंस के आवास में एकेरीसाइड दवा का छिड़काव समयानुसार पशुचिकित्सक के सलाह के अनुसार करते रहना चाहिए। किलनियों से संक्रमित चरागाह मे गाय–भैंस को चरने के लिए नहीं जाने देना चाहिए बल्कि ऐसे चरागाहों मे मौजूद धास को जला दें या चरागाह को कुछ महिनों के लिए बिना चरे छोड़ दें।

मेन्ज

माइट्स द्वार पशुओं मे जो बिमारी होती हैं उसे मेन्ज कहते हैं। माइट्स सूक्ष्मदर्शी से देखे जाने वाले वाह्य परजीवी है जो पशुओं के चमड़े के नीचे डरमीस मे पाये जाते हैं। मेन्ज के कारण गायों मे खुजली, बेचैनी होती हैं, जिसके कारण प्रभावित गाय अच्छी तरह से भोजन नही ग्रहण कर पाता हैं जिसके चलते संक्रमित गाय के दुध उत्पादन में कमी हो जाता है । मेन्ज के संक्रमण के कारण बाल गिरने लगता हैं एवं प्रभावित गाय की चमड़ी भी खराव हो जाती हैं। मेन्ज के उत्तरदायी माइट के पहचान हेतु संक्रमित त्वचा को खरोचकर सूक्ष्मदर्शी की सहायता पता लगाया जाता है।

उपचार– एकेरीसाइड (अमितराज, साइपरमेथिन या डेल्टामेथ्रिन आदि औषधि) के धोल का उपयोग पशुओं के शरीर पर करने से पहले शरीर के प्रभावित चमड़ी को साबुन या शेम्पु की सहायता से अच्छी तरह साफ करना एवं बालो को काटकर हटा देना चाहिए। आइवरमेक्टिन की सूई चमड़ी मे 200 माक्रोग्राम/किलोग्राम का प्रयोग पशुचिकित्सक के सलाह के अनुसार करनी चाहिए । माइट का संक्रमण एक पशु से दूसरे पशु में प्रायः माइट संक्रमित पशु के सर्म्पक मे आने से होता है । अतः माइट संक्रमित पशु को अन्य पशुओं से अलग रखना चाहिए।

दुधारू पशुओं को परजीवियों से बचाव हेतु प्रमुख बातें :

1. पेट की कृमि के संक्रमण के चलते गाय –भैंस में खून की कमी, अपच, शरीर भार में कमी, दूध उत्पादन में कमी, प्रजनन क्षमता एवं कार्य में उपयोग होने वाले पशुओं के कार्य करने की क्षमता में कमी तथा ससमय उपचार न करने पर संक्रमित पशु का मृत्यृ का शिकार हो जाते है ।

2. खूनी परजीवी जनित रोगों के संक्रमण के कारण संक्रमित पशु मे प्रायः बुखार, खून की कमी, दूध उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता अत्याधिक कमी आदि लक्षण पकट होते है ।

3. किलनियों एवं मेंज माइटस के संक्रमण के कारण पशु के शरीर मे खुजलाहट, बेचैनी, रक्त चुसने के कारण गाय मे खून की कमी, दाना–पानी ठीक से ग्रहण नहीं कर पाना, जिसके फलस्वरुप संक्रमित गाय में दूर्बलता, शरीर–भार मे कमी, उत्पादन क्षमता (दूध उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता) में कमी आदि लक्षण दिखाई पड़ता है।

4. परजीवियों के संक्रमण के फलस्वरूप पशुपालक को अत्यधिक आर्थिक क्षति का सामना करना पड़ता है। पर, यदि गाय–भैंस पालक समयानुसार इसके रोकथाम का उपाय कर लें तो अपने

पशुओं में इन परजीवी जनित रोगो के संक्रमण को बहुत हद तक कम कर सकते हैं। दुधारू पशुओं में परजीवियों के संक्रमण के रोकथाम में निम्न सुझावों को जरूर पशुपालक को ध्यान देने की आवश्यकता है–

○ गाय–भैंस के आवास को साफ–सुथरा एवं सूखा रखें।

○ पशुपालको को अपने गाय–भैंस के मल की जाँच प्रत्येक तीन महीने के अन्तराल पर निकटतम पशुचिकित्सालय में जरूर कराते रहना चाहिए ताकि समय पर पशुओं के पेट में मौजूद कृमि का पता चल सकें ।

○ गाय–भैंस में प्रथम कृमिनाशक दवा 3 सप्ताह पर, फिर हर महीना 6 महीने की उम्र तक तथा फिर 6 महीने उम्र बाद प्रत्येक 2 महीने पर कृमिनाशक दवा पशुचिकित्सक के परामर्श से देना चाहिए।

○ गर्भधारण कराने के पहले मादा गाय–भैंस को कृमिनाशक औषधि खिला दें ।

○ कृमि संक्रमित गाय–भैंस के साथ–साथ कृमिमुक्त गाय–भैंस को भी कृमिनाशक औषधि सुबह भूखे पेट देना चाहिए। कृमिनाशक औषधियों की उचित मात्रा एवं बदलाव पशुचिकित्सक के परामर्श पर समयानुसार करते रहें।

○ पेट की कृमि से बचाव हेतु गाय–भैंस के आहार मे प्रोटीन, विटामीन–बी एवं विटामीन–सी प्रचुर मात्रा मे देनी चाहिए ।

○ खूनी परजीवी जनित रोगों के लक्षणें दिखाई पड़ने पर संक्रमित पशु के कान के शिरा से खून निकालकर निकटतम पशुचिकित्सालय में जाँच करानी चाहिए ।

○ गाय–भैंस को किलनी, माइटस, पिस्सू, मक्खी एवं जूँ वाह्यपरजीवियों से बचाव हेतु संक्रमित पशु के शरीर पर एवं पशु आवास में कीटनाशक या एकेरीसाइड दवा का छिड़काव समयानुसार पशुचिकित्सक से सलाह लेकर करते रहना चाहिए।

19 बरसात के मौसम में पशुओं की देखभाल एवं प्रबंधन

योगेंद्र सिंह जादौन एवं अरविन्द कुमार ठाकुर
प्रसार शिक्षा निदेशालय, बिहार पशुविज्ञान विश्वविद्यालय–पटना

सारांशः

भारत में किसान अतिरिक्त आय के लिए पशुओं को पालते हैं, जिनमें मवेशी, भैंस, बकरी, भेड़, घोड़ा आदि शामिल हैं। इस व्यवसाय से अच्छा मुनाफा प्राप्त करने के लिए जानवरों की मौसम से उचित देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता होती है। भारी बारिश, हवा और ओलावृष्टि से बचाने के लिए जानवरों को अच्छे व स्वच्छ आश्रय की जरूरत होती है. जब भी कोई मौसम बदलता हैं तो पशु के शरीर पर दबाव बढ़ जाता हैं जिससे पशु की दुध उत्पादन क्षमता व विशेष तौर से उसकी प्रजनन व स्वस्थ्य क्रियाएं कमजोर पड़ जाती हैं। बदलते मौसम में पशु के लिये मौसम के अनुसार प्रबंधन करना आवश्यक हैं ताकि पशु शरीर की उर्जा का एक भी अंश बर्बाद ना जाए । अगर हम बरसात के मौसम में भी पशुधन के रखरखाव के लिये उचित प्रबंध करेगें, तो हम अपने पशुओं से बिना किसी नुकसान के लगातार उत्पादन एवं मुनाफा कमा सकतें हैं।

सूचक शब्दः बरसात , पशुओं की देखभाल, प्रबंधन।

परिचय :

बारिश सभी को पसंद आती है पर ये भी केवल मौसम की बारिश ही होनी चाहिए लेकिन जरूरत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए अन्यथा नुकसान भी कर सकती हैं। जब नुकसान करती है तो हम इंसान तो फिर भी इससे आसानी से बच जाते है पर इसकी चपेट में पालतू जानवर आ जाते है।

मानसून के समय में वातावरण में आर्द्रता बढ़ जाती है। पशुशाला के अंदर गरमी, जानवरों का मलमूत्र और निस्कासित हवा में जीवाणुओं की संख्या बडने से पशुओं में विभिन्न संक्रामक बीमारियों की संभावना बड़ जाती है। वातावरण में आर्द्रता की अधिकता होने के कारण पशुओं की आंतरिक रोगों से लडने की क्षमता पर भी असर पड़ता है परिणामस्वरूप पशु अनेक रोगों से ग्रसित हो जाता हैं। इसी मौसम के दौरान परजीवियों की संख्या में भी अत्यधिक वृद्धि हो जाती है जिससे पशुओं में परजीवी रोग भी हो सकते हैं। इन रोगों के प्रकोप से पशु का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है जिससे पशुपालकों को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। हमें बारिश से पहले ही कुछ ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे कि पशुओं का स्वास्थ्य एवं उत्पादन सुनिश्चित किया जा सके तथा पशुपालकों को बारिश से होने वाले नुकसान से बचाया जा सके।

बरसात के मौसम में पशुपालक क्या करें? क्या न करें?

- बारिश के पहले पशुओं के पशुशाला की छत की मरम्मत कर दें जिससे बारिश का पानी ना टपके।
- पशुशाला की खिड़कियाँ खुली रखें तथा गर्मी एवं उमस से बचने के लिये पंखों का उपयोग करें।
- बारिश से पहले ही हमे ढेर सारा चारा इकट्ठा रखना चाहिए।
- उनकी दवाइयों कि भी उचित व्यवस्था रखनी चाहिए जिससे बारिश से यदि बीमार भी हो तो जल्दी से दवा दे सके।
- बारिश के मौसम में पशुशाला की साफ सफाई का विशेष ख्याल रखें। उनके रहने के स्थान को साफ और सूखा रखना चाहिए।
- पशुशाला में पशु के मलमूत्र के निकासी का भी उचित प्रबंध हो। पशुशाला को दिन में एक बार फिनाइल के घोल से अवश्य साफ करें जिससे बीमारी फैलाने वाले बैक्टीरिया कम हो सकें।
- नियमित अंतराल पर कीटनाशक को भी छिड़कें।
- कोशिश करें की पशु को बाल्टी से साफ एवं ताजा पानी पिलाएं।
- दाने का भंडारण नमी रहित जगह पर करें और ध्यान दें कि इस मौसम में दाने को 15 दिन से अधिक भंडार न करें।
- बारिश से पहले पशुओं में टीकाकरण अवश्य करवाएं। उचित टीकाकरण पशु चिकित्सक की सलाह पर शुरुआत में ही करें तथा प्रति वर्ष पुन; टीकाकरण दोहराएं। गाय एवं भैंसों में खुरपका मुँहपका, गलघोंटू, टंगिया रोग आदि का टीका बारिश से पहले लगाया जाता है। भेड़ और बकरियों में भी मानसून की शुरुआत में पीपीआर और गलघोंटू का टीका लगाया जाता है।
- पशु चिकित्सक से समय–समय पर सलाह लेते रहें।
- खास बात ये है कि बारिश के मौसम में केवल उन्हें बरसाती चारा ही खिलाएं।

क्या न करें?

- पानी को एक जगह पर एकत्रित नहीं होने दें जिससे मच्छर ना हों और परजीवी संक्रमण रोका जा सके।
- पशुघर में आवश्यकता से अधिक पशुओं को एकत्रित ना करें।
- जलाशय और चरागाह के रास्ते में पशुओं को ना दफनायें।
- पशुओं को बिजली के खम्बे से ना बांधें एवं बिजली के उपकरणों से दूर रखें।
- जानवरों को ज्यादा शारीरिक थकावट ना होने दें और बार–बार धूप में ना लाएं।
- पशु को खेतों के समीप गड्ढे या जोहड़ का पानी पिलाने से परहेज करें क्योंकि इस दौरान किसान खेतों में खरपतवार एवं कीटनाशक का इस्तमाल करते है। जो कि रिसकर इनमें आ जाता है।

- बाड़े में और उसके आसपास कचरा और गंदगी इक्कठा ना होने दें और उसके निकास की उचित व्यवस्था करें।
- बारिश के मौसम में पशुओं को बाहर चरने के लिए नहीं भेजें क्योंकि बारिश के मौसम में गीली घास पर कई तरह के कीड़े होते हैं जो पशुओं के पेट में चले जाते हैं और शरीर को नुकसान पहुँचाते हैं।

निष्कर्ष:

साधारणतया; भारत में वर्षा ऋतु का समय जून महीने से लेकर सितम्बर तक का होता है। पशु अनेक रोगों से ग्रसित हो जाता है। इसी मौसम के दौरान परजीवियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि देखने को भी मिलती है जिनके द्वारा पशुओं को आंतरिक ओर बाह्य परजीवियों के रोग हो जाते हैं। मौसमी बीमारियों की वजह से दुधारू पशुओं का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, इससे उनके दूध उत्पादन में कमी आ जाती है और उसके कारण दूध उत्पादक का काफी आर्थिक नुकसान हो जाता है। इसलिए प्रस्तुत लेख के माध्यम से वर्षा ऋतु के दौरान अपनाने योग्य कुछ महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया गया है, जिनका पालन करने से पशु–पालक अपने पशु संसाधन के स्वास्थ्य को बनाये रख सकते हैं, और अधिक से अधिक मुनाफा कमा सकते हैं।

20 नवजात बछड़े की देखभाल एवं प्रबंधन

रविकांत निराला[1], योगेंद्र सिंह जादौन[2] रवि रंजन कुमार सिन्हा[1] एवं राकेश कुमार[3]

[1]पशुधन उत्पादन प्रबंधन विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना

[2]गव्य प्रसार शिक्षा विभाग, संजय गॉधी गव्य प्रौद्योगिकी संस्थान, पटना

[3]डेयरी सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग, संजय गॉधी गव्य प्रौद्योगिकी संस्थान, पटना

परिचय

नवजात बछड़े की सही देखभाल और प्रबंधन डेयरी पशुपालन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बछड़े का स्वास्थ्य, उसकी वृद्धि और भविष्य में उसकी उत्पादकता का आधार उसके जन्म के तुरंत बाद की देखभाल पर निर्भर करता है। एक स्वस्थ बछड़ा न केवल भविष्य में अधिक दूध उत्पादन में सहायक होता है, बल्कि वह डेयरी फार्म की आर्थिक स्थिति को भी सुदृढ़ बनाता है। इसलिए, बछड़े की प्रारंभिक देखभाल के महत्वपूर्ण पहलुओं को समझना आवश्यक है। इस लेख में, नवजात बछड़े की देखभाल और प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की जाएगी।

1. बछड़े के जन्म के तुरंत बाद की देखभाल

जन्म के तुरंत बाद नवजात बछड़े को विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। यह समय उसके जीवन का सबसे नाजुक समय होता है, और अगर सही ध्यान न दिया जाए, तो उसकी सेहत पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

श्वसन मार्ग की सफाई

जन्म के तुरंत बाद, सबसे पहले बछड़े के श्वसन मार्ग (नाक और मुंह) को साफ करना आवश्यक होता है। इससे बछड़ा पहली सांस आसानी से ले पाता है। यदि नाक और मुंह में बलगम या गंदगी जमा होती है, तो उसे तुरंत साफ करना चाहिए ताकि बछड़े को सांस लेने में कोई कठिनाई न हो।

बछड़े को सुखाना

जन्म के बाद, बछड़ा गीला होता है और यदि उसे जल्दी नहीं सुखाया गया, तो उसे ठंड लग सकती है। माँ (गायभैंस) आमतौर पर अपनी जीभ से बछड़े को चाटकर सुखाती है, लेकिन अगर माँ इसे नहीं करती या पर्याप्त समय नहीं लेती, तो बछड़े को सूखे तौलिये से पोंछकर सुखाना चाहिए। यह प्रक्रिया बछड़े के शरीर को गर्म रखती है और उसे संक्रमण से बचाती है।

नाभि की देखभाल

नवजात बछड़े की नाभि संक्रमण का मुख्य स्रोत हो सकती है। इसलिए, जन्म के तुरंत बाद नाभि को 1–2 % आयोडीन घोल में डुबोकर या स्प्रे करके संक्रमण से बचाया जा सकता है। यह नाभि की चोटों और संक्रमण को रोकने में सहायक होता है।

2. बछड़े को पहला दूध (खीस) पिलाना

नवजात बछड़े को उसकी माँ का पहला दूध, जिसे खीस (Colostrum) कहते हैं, जन्म के 30

मिनट के भीतर पिलाना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। खीस में उच्च मात्रा में रोग प्रतिरोधक तत्व (एंटीबॉडीज) होते हैं, जो बछड़े के रोग प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करने में मदद करते हैं। इसके अलावा, खीस में पोषक तत्वों का उच्च स्तर होता है, जो बछड़े की प्रारंभिक वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं।

खीस का महत्व

- **रोग प्रतिरोधक क्षमता:** नवजात बछड़े का अपना रोग प्रतिरोधक तंत्र पूरी तरह से विकसित नहीं होता। खीस में मौजूद एंटीबॉडीज बछड़े को प्रारंभिक बीमारियों से बचाने में मदद करती हैं।
- **पोषण:** खीस में प्रोटीन, विटामिन, और खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं, जो बछड़े की शारीरिक वृद्धि और ऊर्जा स्तर को बनाए रखने में सहायक होते हैं।
- **पाचन तंत्र की सफाई:** खीस बछड़े के पाचन तंत्र को साफ करता है और पाचन क्रिया को सुचारू बनाने में मदद करता है।

3. आवास प्रबंधन (Calf Housing Management)

नवजात बछड़े के लिए एक साफ, सूखा और हवादार वातावरण जरूरी होता है। बछड़े को ठंड, गंदगी, और अत्यधिक गर्मी से बचाने के लिए विशेष आवास व्यवस्था की जानी चाहिए।

बछड़े का शेड

बछड़े का शेड हवादार और सूखा होना चाहिए। शेड में पर्याप्त जगह होनी चाहिए ताकि बछड़ा आराम से खड़ा हो सके और लेट सके। शेड को नियमित रूप से साफ किया जाना चाहिए ताकि बछड़ा किसी संक्रमण से बच सके। इसके अलावा, शेड में बिछावन (स्ट्रॉ या सूखे घास) का उपयोग किया जाना चाहिए, ताकि बछड़ा गर्म और आरामदायक महसूस करे।

तापमान का ध्यान

नवजात बछड़ों को अत्यधिक ठंड से बचाने के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए। ठंड के मौसम में शेड को गर्म रखने के लिए हीटर या अन्य गर्म उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है। बछड़ों को ठंड से बचाने के लिए गर्म कपड़े या कंबल का भी उपयोग किया जा सकता है।

4. पोषण प्रबंधन (Nutritional Management)

नवजात बछड़े की वृद्धि के लिए सही पोषण जरूरी होता है। खीस के बाद बछड़े को नियमित रूप से माँ का दूध पिलाना चाहिए, और धीरे–धीरे उसे ठोस भोजन की आदत डालनी चाहिए।

दूध पिलाना

बछड़े को दिन में कम से कम 3–4 बार दूध पिलाना चाहिए। दूध पिलाने के लिए साफ और स्वच्छ बाल्टी या बोतल का उपयोग करना चाहिए। बछड़े को दूध पिलाने के बाद उसकी स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए, ताकि दूध के बचे हुए अंश से कोई संक्रमण न हो।

ठोस भोजन की शुरुआत

जब बछड़ा 2–3 सप्ताह का हो जाए, तब उसे धीरे–धीरे ठोस भोजन की आदत डालनी चाहिए।

शुरुआत में उसे सूखा चारा, दलिया, और खनिज मिश्रण दिया जा सकता है। ठोस भोजन के साथ ही उसे पर्याप्त पानी भी दिया जाना चाहिए ताकि उसका पाचन तंत्र सुचारू रूप से काम कर सके।

5. स्वास्थ्य प्रबंधन (Health Management)

नवजात बछड़े की नियमित स्वास्थ्य जांच आवश्यक होती है ताकि किसी भी प्रकार की बीमारी का पता समय पर लगाया जा सके और उसका उपचार किया जा सके। निम्नलिखित स्वास्थ्य प्रबंधन के उपाय अपनाए जाने चाहिएरू

टीकाकरण

बछड़े को विभिन्न बीमारियों से बचाने के लिए समय पर टीकाकरण करवाना चाहिए। यह बछड़े को विशेष बीमारियों, जैसे कि खुरपका–मुंहपका, निमोनिया, और अन्य संक्रमणों से बचाने में मदद करता है।

कृमिनाशक दवाओं का उपयोग

बछड़े के पेट में कृमि (वर्म) होने की संभावना अधिक होती है, जो उसकी वृद्धि को प्रभावित कर सकती है। इसके लिए समय–समय पर कृमिनाशक दवाओं का उपयोग किया जाना चाहिए।

स्वास्थ्य निरीक्षण

बछड़े की नियमित रूप से स्वास्थ्य निरीक्षण करना चाहिए, जिसमें उसका वजन, शारीरिक विकास, और सामान्य स्वास्थ्य की जांच शामिल हो। अगर बछड़ा सुस्त या बीमार दिखता है, तो तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए।

6. बछड़े का सामाजिक और मानसिक विकास

बछड़े का मानसिक और सामाजिक विकास भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि उसका शारीरिक विकास। उसे दूसरे बछड़ों के साथ खेलने और घूमने का अवसर देना चाहिए ताकि वह मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहे।

सामाजिक संपर्क

बछड़े को अन्य बछड़ों के साथ रखने से वह जल्दी सीखता है और सामाजिक व्यवहार विकसित करता है। समूह में रहने से बछड़ा अधिक सक्रिय और खुश रहता है, जिससे उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

व्यायाम

बछड़े को खुले में छोड़ना चाहिए ताकि वह स्वतंत्र रूप से घूम सके और दौड़ सके। यह उसके शरीर की मांसपेशियों को मजबूत बनाने में सहायक होता है और उसकी शारीरिक वृद्धि को भी बढ़ावा देता है।

निष्कर्ष

नवजात बछड़े की देखभाल और प्रबंधन डेयरी फार्म की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक स्वस्थ बछड़ा भविष्य में एक उत्पादक गाय या भैंस बन सकता है। इसलिए, बछड़े

के जन्म से लेकर उसके विकास तक, सभी चरणों में सही देखभाल और प्रबंधन की आवश्यकता होती है। स्वच्छता, पोषण, स्वास्थ्य, और सामाजिक विकास के इन पहलुओं पर ध्यान देकर, पशुपालक बछड़ों की बेहतर देखभाल कर सकते हैं और अपने डेयरी व्यवसाय को सफल बना सकते हैं।

21 पशुओं में जनन चक्र एवं विशेषतायें

सुमित सिंघल, आलोक कुमार एवं भावना
पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग
बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना– 14

प्रस्तावना

पशुओं के सफल प्रजनन और स्वस्थ प्रजनन चक्र का ज्ञान पशुपालन उद्योग में बहुत महत्वपूर्ण है। खासकर गायों के लिए, जिनसे हमें दूध, बछड़े और कई अन्य आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण उत्पाद प्राप्त होते हैं, उनका प्रजनन चक्र ठीक प्रकार से समझना और प्रबंधित करना अनिवार्य है। जनन चक्र (मासिक धर्म चक्र) एक जैविक प्रक्रिया है जो मादा पशुओं में गर्भाधान और प्रजनन के लिए आवश्यक है। यह चक्र हार्मोनल परिवर्तन, व्यवहारिक संकेतों और जैविक क्रियाओं का परिणाम है। गायों के जनन चक्र की सही जानकारी न केवल उनके प्रजनन की सफलता को सुनिश्चित करती है, बल्कि पशुपालकों के आर्थिक लाभ को भी बढ़ाती है।

इस लेख में हम गायों के जनन चक्र के बारे में गहराई से चर्चा करेंगे, जिसमें उनके हार्मोनल नियंत्रण, विभिन्न चरण, और प्रजनन की संभावनाओं को बढ़ाने के लिए आवश्यक प्रबंधन शामिल हैं।

1. जनन चक्र का परिचय

1.1 जनन चक्र क्या है?

जनन चक्र मादा पशुओं की वह जैविक प्रक्रिया है जिसमें हार्मोनल बदलावों के चलते ओव्यूलेशन (डिंबोत्सर्जन), एस्ट्रस (गर्भाधान काल), और गर्भधारण की संभावनाएँ बनती हैं। यह प्रक्रिया पशुओं में प्रजनन की सफलता और नई पीढ़ी के निर्माण के लिए अत्यावश्यक होती है। गायों में, यह चक्र नियमित रूप से हर 21 दिनों के अंतराल पर होता है, जब तक कि वे गर्भवती नहीं हो जातीं।

1.2 जनन चक्र की अवधि

गायों का जनन चक्र सामान्यतः 18 से 24 दिनों के बीच होता है, लेकिन इसकी औसत अवधि 21 दिन मानी जाती है। यह चक्र चार प्रमुख चरणों में विभाजित किया जा सकता हैः प्रोएस्टस, एस्ट्रस, मेटएस्टस और डाइएस्ट्रस।

1.3 मादा पशुओं में जनन चक्र का जैविक महत्त्व

प्रजनन चक्र मादा पशु के प्रजनन स्वास्थ्य को बनाए रखने और बछड़े के उत्पादन के लिए एक अनिवार्य प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया हार्मोन द्वारा नियंत्रित होती है, जो अंडाशय, गर्भाशय, और अन्य

जनन अंगों की गतिविधियों को नियंत्रित करती हैं। समय पर गर्भाधान और सही जनन चक्र पशु की उत्पादकता और प्रजनन क्षमता को बनाए रखने में सहायक होते हैं।

2 गायों में जनन चक्र

2.1 गायों का विशिष्ट जनन चक्र

गायों में प्रजनन चक्र अन्य मादा स्तनधारियों की तुलना में समान लेकिन कुछ विशिष्ट चरणों से गुजरता है। जनन चक्र की शुरुआत प्रोएस्टस से होती है, जो एस्ट्रस तक पहुँचता है, इसके बाद मेटएस्टस और डाइएस्ट्रस चरण आते हैं। प्रत्येक चरण में हार्मोनल परिवर्तन, व्यवहारिक लक्षण, और शरीर में जैविक प्रतिक्रियाएँ होती हैं जो ओव्यूलेशन और गर्भाधान को संभव बनाती हैं।

2.2 जनन चक्र की अवधि

गायों के जनन चक्र की अवधि लगभग 21 दिन होती है, लेकिन यह 18 से 24 दिन तक भिन्न हो सकती है। जनन चक्र के बीच का अंतराल महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह इस बात का संकेत देता है कि गाय कब गर्भाधान के लिए तैयार है। यह प्रक्रिया दूध उत्पादन और बछड़ों के उत्पादन को सीधे प्रभावित करती है।

2.3 गायों में प्रजनन गतिविधियों के प्रमुख चरण

गायों का जनन चक्र चार प्रमुख चरणों में विभाजित किया जाता है, जिनका वर्णन नीचे किया गया है।

3. जनन चक्र के विभिन्न चरण

3.1 प्रोएस्टस

यह चरण जनन चक्र की शुरुआत का संकेत देता है और इसकी अवधि लगभग 3 से 4 दिनों की होती है। इस चरण में गाय के अंडाशय में ग्रैफियन फॉलिकल्स (अंडाणु विकसित करने वाली संरचनाएँ का विकास होता है। एस्ट्रोजन हार्मोन का स्तर बढ़ता है, जिससे जनन अंगों में बदलाव आते हैं और गाय के व्यवहार में परिवर्तन देखा जाता है। गाय अधिक सक्रिय हो जाती है, अन्य गायों पर चढ़ने की कोशिश करती है, और उसके जनन मार्ग से हल्का स्राव होने लगता है।

3.2 स्ट्रस (गर्भाधान काल)

यह जनन चक्र का सबसे महत्वपूर्ण चरण होता है, जब गाय गर्भाधान के लिए तैयार होती है। एस्ट्रस अवधि सामान्यतः 12 से 18 घंटे की होती है, लेकिन यह 24 घंटे तक बढ़ सकती है। इस दौरान गाय अन्य गायों पर चढ़ने का प्रयास करती है, और अन्य गायें भी उस पर चढ़ने की कोशिश करती हैं। इस चरण में गाय के जनन मार्ग से साफ और पारदर्शी स्राव होता है, और उसका बाह्य

जनन अंग सूजा हुआ और गुलाबी दिखाई देता है। यह चरण ओव्यूलेशन के समय को इंगित करता है, और इस समय के भीतर गर्भाधान की संभावना सबसे अधिक होती है।

3.3 मेटएस्टस

मेटएस्टस वह चरण होता है जब ओव्यूलेशन यानी अंडाणु का स्राव होता है। यह चरण एस्ट्रस के तुरंत बाद शुरू होता है और इसकी अवधि लगभग 2 से 3 दिन होती है। इस दौरान अंडाशय से अंडाणु निकलता है और प्रोजेस्टेरोन का उत्पादन शुरू होता है। अगर गर्भाधान सफल हो जाता है, तो अंडाणु गर्भाशय में स्थापित होता है और बछड़ा विकसित होने लगता है।

3.4 डाइएस्ट्रस

यह चरण गर्भाधान न होने की स्थिति में होता है और इसकी अवधि लगभग 12 से 14 दिन होती है। इस दौरान प्रोजेस्टेरोन का स्तर ऊँचा होता है और यह अंडाशय से आता है। अगर गर्भाधान नहीं होता है, तो प्रोजेस्टेरोन का स्तर गिर जाता है और जनन चक्र फिर से शुरू होता है। इस चरण में गाय शांत रहती है और कोई विशेष व्यवहारिक संकेत नहीं दिखाती है।

4. हार्मोनल नियंत्रण और ओव्यूलेशन

4.1 हार्मोन का प्रभाव

गायों के जनन चक्र में विभिन्न हार्मोनल परिवर्तन होते हैं, जिनमें मुख्य रूप से एस्ट्रोजन, प्रोजेस्टेरोन, ल्यूटिनाइजिंग हार्मोन (LH), और फॉलिकल स्टिमुलेटिंग हार्मोन (FSH) शामिल हैं। ये हार्मोन अंडाशय और गर्भाशय के कार्य को नियंत्रित करते हैं।

4.2 हार्मोन का उत्पादन

गायों में हार्मोन का उत्पादन अंडाशय और पिट्यूटरी ग्रंथि द्वारा किया जाता है। एस्ट्रोजन अंडाशय में फॉलिकल्स के विकास को प्रोत्साहित करता है, जबकि LH और FSH ओव्यूलेशन की प्रक्रिया को नियंत्रित करते हैं। प्रोजेस्टेरोन गर्भाशय को गर्भधारण के लिए तैयार करता है और अगर गर्भाधान नहीं होता है, तो इसका स्तर कम हो जाता है, जिससे जनन चक्र फिर से शुरू हो जाता है।

5. जनन चक्र में असमान्यताएँ

5.1 गायों में असामान्य जनन चक्र के कारण

गायों में जनन चक्र की असमान्यताएँ कई कारणों से हो सकती हैं, जिनमें पोषण की कमी, हार्मोनल असंतुलन, वातावरणीय प्रभाव, या स्वास्थ्य समस्याएँ शामिल हैं। इन असामान्यताओं के कारण गाय की प्रजनन क्षमता प्रभावित हो सकती है और गर्भाधान में कठिनाई हो सकती है।

5.2 वातावरणीय पोषण और अन्य जैविक कारक

पर्याप्त पोषण और सही वातावरण गायों के जनन चक्र को संतुलित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उच्च तनाव, तापमान में वृद्धि, और पोषक तत्वों की कमी से जनन चक्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

6. जनन चक्र की पहचान और प्रबंधन

6.1 प्रजनन चक्र की पहचान के तरीके

जनन चक्र की पहचान के लिए गायों के व्यवहारिक और शारीरिक संकेतों का अवलोकन किया जाता है। हीट डिटेक्शन के लिए समयबद्ध तरीकों का उपयोग, जैसे कि गायों के जनन मार्ग से स्राव और व्यवहारिक संकेतों का अध्ययन, उपयोगी हो सकता है।

6.2 समयबद्ध गर्भाधान

गर्भाधान के लिए सही समय का चुनाव जनन चक्र की सफलता के लिए आवश्यक है। समयबद्ध गर्भाधान से प्रजनन क्षमता में सुधार किया जा सकता है, जिससे पशुपालन में अधिक उत्पादकता प्राप्त होती है।

7. जनन चक्र का प्रजनन पर प्रभाव

7.1 प्रजनन सफलता के लिए समयबद्ध जनन चक्र का महत्त्व

समयबद्ध जनन चक्र की जानकारी से पशुपालक सही समय पर गर्भाधान कर सकते हैं, जिससे प्रजनन की सफलता दर बढ़ती है। इससे पशुओं में बेहतर उत्पादन और स्वास्थ्य बनाए रखा जा सकता है।

7.2 उच्च दुग्ध उत्पादन के लिए प्रजनन चक्र का प्रबंधन

सही तरीके से प्रजनन चक्र का प्रबंधन करने से गायों में दुग्ध उत्पादन की दर में वृद्धि हो सकती है। बछड़ों का समय पर उत्पादन भी दुग्ध उत्पादन में सहायक होता है, जो पशुपालन उद्योग के लिए लाभदायक है।

निष्कर्ष

गायों के जनन चक्र की सही जानकारी और प्रबंधन से पशुपालन में लाभ और उत्पादकता में वृद्धि होती है। हार्मोनल बदलावों, जनन चक्र के चरणों, और प्रजनन प्रक्रिया की गहराई से समझ पशुओं की प्रजनन क्षमता को बढ़ाने और उनकी उत्पादकता को बनाए रखने में सहायक होती है।

22 सर्दियों में जानवरों को होने वाले प्रमुख रोग और सलाह

मृत्युंजय कुमार, विवेक कुमार सिंह एवं पल्लव शेखर
पशु औषधि विभाग/वेटरनरी क्लीनिकल काम्प्लेक्स
बिहार पशुचिकित्सा महाविद्यालय, पटना

सर्दियों में जानवरों को होने वाले प्रमुख रोग

सर्दियों का मौसम जानवरों के लिए कठिनाई भरा हो सकता है। ठंड के कारण जानवरों की प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो जाती है और उन्हें कई प्रकार की बीमारियों का सामना करना पड़ता है जैसे न्यूमोनिया, मुहपका खुरपका, गलघोंटू आदि। इसके आलावे सर्दियों के मौसम में जानवरों में कई प्रकार की चयापचय संबंधी (मेटाबॉलिक) बीमारियाँ देखने को मिलती हैं। इन बीमारियों का मुख्य कारण ठंड के मौसम में शरीर के ऊर्जा संतुलन में गड़बड़ी और पोषण की कमी होता है। इन बीमारियों से जानवरों को बचाने के लिए सही समय पर निदान और उपचार जरूरी है।

1. मुहपका खुरपका (खंजहा)

कारण: वायरस जनित बीमारी जो संक्रमित पशुओं के संपर्क में आने से तथा हवा के द्वारा भी फैलती है।
लक्षण: मुँह, पैरों और जीभ में छाले, लंगड़ाना, भोजन छोड़ना आदि।
बचाव: नियमित टीकाकरण, साफ–सफाई, संक्रमित पशुओं से दूरी बनाना।

2. लम्पी स्किन डिजीज (एल.एस.डी)

कारण: एक विषाणुजनित रोग है जो गाय, भैंस और अन्य मवेशियों में पाया जाता है।
लक्षण: त्वचा पर गांठें, बुखार, लार बहना, आँख और नाक से स्राव।
बचाव: समय पर टीकाकरण, कीट नियंत्रण, संक्रमित मवेशियों को अलग रखना।

3. गलघोंटू (एच. एस.)

कारण: बैक्टीरियल संक्रमण जो ठंडे मौसम में अधिक फैलता है।
लक्षण: बुखार, गले और गर्दन में सूजन, साँस लेने में कठिनाई।
बचाव: समय पर टीकाकरण, साफ पीने का पानी और संतुलित आहार।

4. जहरवाद (लंगड़ा बीमारी/बी. क्यू.)

कारण: बैक्टीरिया जनित रोग जो ठंड के मौसम में अधिक प्रभावी होता है।
लक्षण: तेज बुखार, भूख न लगना, साँस की तकलीफ, नाक से बलगम आना।

बचाव: नियमित टीकाकरण और साफ–सफाई का विशेष ध्यान।

5.फेफड़ों की सूजन (न्यूमोनिया)

कारण: अत्यधिक ठंड और गंदगी में रहने से फेफड़ों में संक्रमण होता है।
लक्षण: साँस लेने में कठिनाई, तेज बुखार, नाक से बलगम आना, खाने–पीने में कमी।
बचाव: जानवरों को गर्म स्थान में रखें, साफ–सफाई का ध्यान रखें और टीकाकरण कराएँ।

6. अल्पताप (हाइपोथर्मिया)

कारण: अत्यधिक ठंड और लंबे समय तक खुले में रहने से शरीर की गर्मी कम हो जाती है।
लक्षण: शरीर का तापमान सामान्य से कम हो जाना, थरथराना, सुस्ती।
बचाव: जानवरों को अच्छी तरह से गर्म और सूखा रखें, उन्हें ठंडी हवाओं से बचाएँ।

7. किटोसिस

कारण: ठंड के मौसम में पोषण की कमी और कम ऊर्जा प्राप्त होने पर वसा का अत्यधिक टूटना होता है, जिससे केटोन बॉडीज का उत्पादन होता है और यह स्थिति उत्पन्न होती है।
लक्षण: भूख में कमी, दूध उत्पादन में गिरावट, कमजोरी, वजन घटना, पेशाब और सांस से एसिटोन जैसी गंध, पशु शुरु में दाना खाना और बाद में चारा खाना बंद केर देती है।
बचाव: जानवरों को संतुलित आहार दें, जिसमें पर्याप्त मात्रा में कार्बोहाइड्रेट और ऊर्जा हो। नियमित रूप से उनके स्वास्थ्य की जांच करें।

8. दुग्ध का बुखार (हाइपोकेल्सेमियाए/मिल्क फीवर)

कारण: सर्दियों में दुधारू पशुओं में कैल्शियम की कमी से बच्चा देने के ४८ घंटा के अन्दर यह समस्या उत्पन्न होती है।
लक्षण: शारीर का तापमान कमना, पेशियों में कमजोरी, खड़ा न हो पाना, गर्दन को पेट के तरफ मोरना आदि।
बचाव: कैल्शियम युक्त आहार दें और गायों के दूध उत्पादन के समय विशेष रूप से ध्यान दें।

9. हाइपोमैग्नेसिमिया (ग्रास टेटनी)

कारण: ठंड के मौसम में हरी घास की कमी या कम मैग्नेशियम वाले चारे के सेवन से यह

बीमारी होती है। यह खासतौर पर दुधारू गायों और भेड़ों में होती है।
लक्षण: कंपकंपी, पेशियों में ऐंठन, अकारण घबराहट, मौत का खतरा।
बचाव:आहार में मैग्नेशियम युक्त पूरक दें, जैसे मैग्नेशियम सल्फेट या ऑक्साइड।

10. फैटी लीवर सिंड्रोम

कारण: सर्दियों में ठंड और पोषण की कमी के कारण जानवरों के शरीर में वसा का अत्यधिक संचय हो जाता है, जिससे लिवर की कार्यक्षमता प्रभावित होती है।
लक्षण: भूख कम लगना, दूध उत्पादन में गिरावट, वजन घटाना, कमजोरी।
बचाव: संतुलित आहार और ऊर्जा युक्त खाद्य सामग्री दें, और लिवर की सुरक्षा के लिए दवाइयाँ दें।

11. अफरा

कारण: सर्दियों में अधिक मात्रा में ऊर्जा युक्त आहार जैसे अनाज के अधिक सेवन से रुमिनल एसिडोसिस हो सकता है।
लक्षण: पेट फूलना, दस्त, सुस्ती, आहार में अरुचि।
बचाव: जानवरों को संतुलित और नियंत्रित आहार दें, और आहार में फाइबर की पर्याप्त मात्रा सुनिश्चित करें।

सर्दियों में जानवरों की बीमारियों से बचाव के लिए सलाह (एडवाइजरी)

सर्दियों के मौसम में ठंड और आहार की कमी के कारण जानवरों की प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो जाती है, जिससे वे विभिन्न बीमारियों की चपेट में आ सकते हैं। इन बीमारियों से बचाव के लिए सही देखभाल, टीकाकरण, और उचित आहार आवश्यक होता है। नीचे दी गई सलाह का पालन करके पशुपालक सर्दियों में अपने पशुओं की सेहत की रक्षा कर सकते हैंरू

पशुओं के बाड़े को ठंड और हवा से बचाने के लिए प्लास्टिक शीट, तिरपाल या पुराने बोरे से ढकें।हवा के प्रवेश के लिए बाड़े में पर्याप्त वेंटिलेशन रखे, लेकिन ठंडी हवा सीधा अंदर न आए।बाड़े की दीवारों और छत को इस तरह बनाएं कि ठंड कम से कम अंदर प्रवेश करे।

पशुओं को ठंडी जमीन से बचाने के लिए सूखे और गर्म बिस्तर की व्यवस्था करें।भूसे या सूखी घास का उपयोग करें, ताकि पशुओं को सोने के लिए आरामदायक और गर्म जगह मिले।बिस्तर को नियमित रूप से बदलते रहें ताकि यह गंदगी और नमी से मुक्त रहे।

पशुओं के सर्दी में उच्च ऊर्जा वाला आहार जैसे हरी घास, भूसा, दानेदार चारा और खली का सही मिश्रण आहार में दें।उनके चारे में गुड़ या अन्य ऊर्जा युक्त पदार्थ मिलाकर दें ताकि वे ठंड में भी पर्याप्त ऊर्जा प्राप्त कर सकें।

ठंड में पानी पीने की प्रवृत्ति कम हो जाती है, इसलिए पशुओं को हल्का गुनगुना पानी पिलाएँ। यह उनकी पाचन क्रिया और शरीर की तापमान बनाए रखने में मदद करता है।दिन में दो से अधिक बार पानी उपलब्ध कराएँ और सुनिश्चित करें कि वे पर्याप्त मात्रा में पानी पी रहा है ।

आहार में आवश्यक विटामिन (A,D) और मिनरल्स (कैल्शियम, फॉस्फोरस) का पूरक दें, जिससे पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता बनी रहे और वे ठंड से सुरक्षित रहें।

सर्दियों के मौसम में मुहपका खुरपका, गलघोंटू, जहरवाद जैसी बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है।पशुओं को इन बीमारियों से बचाने के लिए समय पर निम्नलिखित टीकाकरण कराएँ।

टीका का नाम	प्रथम टीकाकरण का ऊम्र	बूस्टर–टीकाकरण	पुन रू टीकाकरण
मुहपका खुरपका टीका	4 महिना या उससे ज्यादा	प्रथम टीकाकरण के1महीना बाद	प्रत्येक 6 महीने पर (अप्रैल–मई , अक्टूबर–नवम्बर)
गलाघोंटू टीका	6 महिना या उससे ज्यादा	.....	प्रत्येक वर्ष (अप्रैल–मई)
लँगड़ा रोग टीका	6 महिना या उससे ज्यादा	.....	प्रत्येक वर्ष (अप्रैल–मई)
गाठदार त्वचा रोग (एल .एस .डी)	6 महिना या उससे ज्यादा	.....	प्रत्येक वर्ष

- ठंड के मौसम में पशुओं का दूध उत्पादन घट सकता है, इसलिए संतुलित आहार और उचित देखभाल के जरिए इस पर ध्यान दें।पशुओं को पर्याप्त ऊर्जा और पोषण देने से दूध उत्पादन सामान्य बना रहता है।
- दूध निकालने के बाद पशुओं के थन को गुनगुने पानी से साफ करें और उन्हें सूखा रखें।थन में कोई चोट या संक्रमण हो तो तुरंत उपचार कराएँ।
- ठंड के कारण पशु सुस्त हो सकते हैं, इसलिए उन्हें नियमित रूप से खुले में व्यायाम करने दें। यह उनके शरीर को सक्रिय और स्वस्थ बनाए रखता है।उन्हें धूप में बाहर ले जाएँ ताकि उन्हें प्राकृतिक गर्मी मिले।
- ठंड के मौसम में कोई भी पशु बीमार हो जाए या कोई अन्य आपात स्थिति हो तो तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करें।

RE: 7992457574

प्रसार शिक्षा निदेशालय, बिहार पशु विज्ञान विश्चचिद्यालय, पटना.14

Directorate of Extension Education

Bihar Animal Sciences University, Patna-14